वार्षिक रु. २००, मूल्य रु. २५

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६३ अंक १२ दिसम्बर २०२५

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६३

अंक १२

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

अग्रहायण, सम्वत् २०८२

दिसम्बर, २०२५

अनुक्रमणिका

* माँ सारदा का स्वरूप क्या है, तुम लोग नहीं समझ सके हो : विवेकानन्द ५३४
* शास्त्रानुसार श्रीमाँ सारदा का दिव्य जीवन (स्वामी दयापूर्णानन्द) ५३७
* अन्नदायिनी ब्रह्मज्ञान-प्रदायिनी श्रीमाँ सारदा (रीता घोष) ५४१
* (बच्चों का आंगन) बच्चों पर अहैतुकी कृपा बरसानेवाली माँ (श्रीमती मिताली सिंह) ५५१
* आधुनिक नारी और प्राचीन आस्था का संघर्ष (डॉ. जया सिंह) ५५२
* (युवा प्रांगण) आशावान, बलवान और संकल्प में दृढ़ बनो (स्वामी गुणदानन्द) ५५७
* सम्बन्धों का सम्पोषण : सहभाजन एवं संरक्षण की कला (स्वामी निखिलेश्वरानन्द) ५५९
* वैराग्य-सुख का अनुभव कीजिये (स्वामी सत्यरूपानन्द) ५६३
* (भजन एवं कविता) सम्बल बनूँ (विजय कुमार श्रीवास्तव) ५५५
* कौन तुम करुणामयी हो (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा), * कर कृपा-वर्षण तनय पर (डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी'), * मेरी सारदा माँ आयी है (श्रीमती अचला देवी) ५५६
* श्रीरामकृष्ण-स्तुति–८ (रामकुमार गौड़) ५६२
* रास कान्हा ने रचाई (श्रीधर प्रसाद द्विवेदी) ५६७
* वार्षिक अनुक्रमणिका–२०२५ ५७१

श्रृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ५३३
पुरखों की थाती ५३३
सम्पादकीय ५३५
रामगीता ५४८
श्रीरामकृष्ण-गीता ५६४
गीतातत्त्व-चिन्तन ५६५
साधुओं के पावन प्रसंग ५६८
समाचार और सूचनाएँ ५७०

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५ (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)

ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***

आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए	१० वर्षों के लिए
एक प्रति २५/-	२००/-	१०००/-	२०००/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	६० यू.एस. डॉलर	३०० यू.एस. डॉलर	
संस्थाओं के लिए	३००/-	१५००/-	

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा करायें :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम, रायपुर, छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

आवश्यक सूचना

विवेकानन्द जयन्ती-२०२६ के उपलक्ष्य में रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी छात्र-छात्राओं के लिये १४ जनवरी, २०२६ से २२ जनवरी, २०२६ तक विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया जायेगा।

१२ जनवरी, २०२६ को राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया जायेगा।

२५ जनवरी, २०२६ को विवेकानन्द जयन्ती समारोह का उद्घाटन होगा।

२६ जनवरी २०२६ से १ फरवरी २०२६ तक वृन्दावन धाम के प्रसिद्ध भागवत प्रवचनकार पं. अखिलेश शास्त्री जी का श्रीमद्भागवत पर प्रवचन होगा।

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर रामकृष्ण मठ, बैंगलुरु में स्थित श्रीमाँ सारदा देवी के स्मारक को दर्शाया गया है, जहाँ पर उनको भावावस्था हुई थी। श्रीमाँ की भावावस्था को देखकर स्वामी रामकृष्णानन्द उनकी स्तुति करने लगे और उन्होंने कहा था कि श्रीमाँ पर्वतवासिनी हुई हैं।

दिसम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

११	श्रीमाँ सारदा देवी
१५	स्वामी शिवानन्द
२४	क्रिसमस ईव
२६	स्वामी सारदानन्द
१,१५,३१	एकादशी

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री पार्थ दुआ, कपिल विहार, फरीदाबाद (हरियाणा)	५,०००/-
श्रीमती कृष्णा बन्छोर, तात्यापारा, रायपुर (छ.ग.)	५,००१/-
श्री सुनील कुमार गुप्ता, विकासपुरी, नई दिल्ली	२,१००/-
श्री केजुराम साहु, वीआईपी रोड, रायपुर (छ.ग.)	२,१००/-

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

रामकृष्ण मिशन आश्रम,
मोराबादी, राँची - 834008 (1927-2027),

e-mail : ranchi.morabadi@rkmm.org, Web : www.rkmranchi.org

श्रीरामकृष्ण मन्दिर नवनिर्माण के लिए विनम्र निवेदन

भगवान श्रीरामकृष्ण देव के अन्तरंग शिष्य श्रीमत् स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज के चरण रज से पवित्र तथा श्रीश्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य एवं रामकृष्ण संघ के आठवें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज की तपस्थली ''रामकृष्ण मिशन आश्रम, मोराबादी, राँची'' की स्थापना 1927 में हुई थी। शीघ्र ही वर्ष 2027 ई. में इस आश्रम की स्थापना का शताब्दी वर्ष प्रभु कृपा से हर्ष और उल्लास के साथ मनाया जाएगा । रामकृष्ण संघ के 11 वें संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गंभीरानन्द जी महाराज के तपस्या से पवित्र इस आश्रम हेतु हम सभी अनुरागी, भक्तों और शुभ-चिन्तकों के लिए सेवा-यज्ञ में आहुति प्रदान करने का यह परम-पवित्र अवसर है । आश्रम के इस शताब्दी वर्ष में विशेषकर राँची जिला के निकवटर्वी गाँवों में आदिवासी जनजाति के कल्याण के साथ-साथ उनके सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए विभिन्न प्रकार के कार्यक्रम का आयोजन श्रीश्रीठाकुर, श्रीमाँ तथा स्वामीजी द्वारा प्रदत्त पथ के माध्यम से हो रहा है ।

आश्रम परिसर में श्रीश्रीठाकुर, श्रीश्रीमाँ तथा स्वामीजी का वर्तमान मन्दिर अत्यन्त छोटा तथा भग्नावस्था में है । अतः मन्दिर का नव निर्माण अनिवार्य है इसके साथ ही साथ आश्रम परिसर के परिदृश्य (लैंड स्केपिंग) में भी आवश्यक सुधार अपेक्षित है। इसके अलावा साधु निवास, रसोई घर एवं भोजनालय भी प्रस्तावित है । इस विस्तार के लिए मनुमानित लागत निम्न प्रकार है :

कं.सं.	निर्माण	क्षेत्रफल (वर्ग फीट में)	प्रस्ताव	अनुमानित लागत (करोड़ में)
1.	मन्दिर तथा लैंड स्केप	15,198	दो तलों में निर्माण तथा परिसर का सौंदर्यीकरण	6.0
2.	साधु निवास, रसोई घर एवं भोजनालय	7,500	वर्तमान साधु निवास के ऊपर एक तल का निर्माण, रसोईघर, भोजनालय का पुनर्निमाण	1.5
			कुल लागत	7.5

इस शताब्दी वर्ष के अवसर पर सभी भक्तों से अनुरोध है कि कृपया इस महत्त्वपूर्ण कार्य में आप यथासंभव योगदान कर पुण्य के भागी बनें ।

ध्यातव्य : प्रदत्त दान आयकर की धारा 80 जी के अन्तर्गत करमुक्त है। एक लाख से अधिक दानदाताओं का नाम मन्दिर परिसर पर अंकित होगा । दानकर्ताओं को 4 श्रेणियों में सम्मानित किया जाएगा ।

1) **रजत श्रेणी :** रुपये 1 लाख से 5 लाख तक
2) **स्वर्ण श्रेणी :** रुपये 5 लाख से अधिक व 10 लाख तक
3) **हीरक श्रेणी** : रुपये 10 लाख से अधिक व 20 लाख तक
4) **प्लेटेनियम श्रेणी** : रु. 20 लाख से अधिक

निवेदन : मन्दिर निर्माण हेतु सहयोग राशि निम्नलिखित बैंक खाते के माध्यम से कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किये जायेंगे ।

Click Below fro Online Donation :
https://bit.ly/317 lzyh
Scan the below given QR Code to log into our Online Donation Site

Account Name : Ramakrishna Mission Ashrama,
Account No. : 50200081665283
Bank Name : HDFC BANK LTD. Morabadi,
IFSC CODE : HDFC0007443

सहयोग राशि के साथ अपना ईमेल, पैन नं., मोबाईल नं., पूरा पता एवं उद्देश्य हमारे ईमेल **ranchi.morabadi@rkmm.org** या मोबाईल नं. 9835158705 पर भेजें ।

प्रभु की सेवा में आपका
स्वामी भवेशानन्द
सचिव

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !
आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।
इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी
भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!
Sudarshan Saur
सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए
सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए
सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए
घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त
समझदारी की सोच!
३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!
आजीवन सेवा
लाखां संतुष्ट ग्राहक
विस्तृत डीलर नेटवर्क
Sudarshan Saur®
www.sudarshansaur.com
Toll Free
1800 233 4545
E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६३ **दिसम्बर २०२५** **अंक १२**

श्रीमाँ सारदा-स्तुतिः

न याचे समृद्धिं न चानित्यमायु-
र्न रूपं न धर्मं यशो वा समित्रम्।
अधर्मं न कार्यं न दैन्यं दिवं वा
मतिर्मे तु भूयात् पदे सारदायाः ।।
स्वदेशे विदेशे भव त्वं दयार्द्रा-
त्वनीचे सुनीचे समाना विधात्री।
जले वा भुवि त्वं प्रजानां शरण्या
नमस्ते नमस्ते पदे शारदायाः ।।

– हे मातः सारदे! मैं समृद्धि, अनित्य आयु, रूप, धर्म, यश, मित्र, अधर्म, कार्य, दैन्य या स्वर्ग कुछ भी नहीं चाहता। मैं केवल प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे चरण-कमलों में मेरी बुद्धि स्थिर रहे।

तुम्हारी करुणा-धारा सर्वत्र स्वदेश-विदेश में समान भाव से प्रवाहित हो रही है। तुम्हारी दृष्टि ऊँच या नीच सभी के प्रति समान है। जल या थल में सर्वत्र तुम शरणागतों को अभय प्रदान करते हुये आश्रय देती हो। इसलिये हे जननी सारदे! तुम्हारे चरण-कमलों में बारम्बार प्रणाम।

पुरखों की थाती

स्वश्लाघा परनिन्दा च लक्षणं निर्गुणात्मनाम्।
परश्लाघा स्वनिन्दा तु लक्षणं सदगुणात्मनाम् ।।८८७।।

– आत्मप्रशंसा तथा दूसरों की निन्दा, ये दुर्गुणी लोगों के लक्षण हैं और दूसरों की प्रशंसा तथा आत्मनिन्दा, ये सद्गुणी लोगों के परिचायक हैं।

मृगा मृगैः सङ्गमनुव्रजन्ति
गावश्च गोभिः तुरगास्तुरंगैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधियः सुधीभिः
समान-शील-व्यसनेषु सख्यम् ।।८८८।।

– जैसे हिरण अन्य हिरणों का, गाय अन्य गायों का, घोड़ा अन्य घोड़ों का संग करते हैं, वैसे ही मूर्खजन अन्य मूर्खों के साथ और विद्वज्जन अन्य विद्वानों का संग करते हैं। तात्पर्य यह कि एक समान गुण तथा स्वभाव के लोगों के बीच ही मैत्री जमती है।

वृक्षच्छाया यतिद्रव्यं कीटिका-धान्य-संचयः।
पिता पालयते कन्यां, ते सर्वे पर-कारणम् ।।८८९।।

– वृक्षों की छाया, सन्तों की सम्पदा, कीड़े द्वारा अन्न-संचय और पिता द्वारा पुत्री का पालन, ये सभी दूसरों की सेवा के लिये होते हैं।

माँ सारदा का स्वरूप क्या है, तुम लोग नहीं समझ सके हो : विवेकानन्द

माँ का स्वरूप तत्त्वतः क्या है तुम लोग अभी नहीं समझ सके हो – तुममें से एक भी नहीं। किन्तु धीरे-धीरे तुम जानोगे। भाई, शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं हो सकता। क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे अधम है, शक्तिहीन है, पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति की अवमानना होती है। उस महाशक्ति को भारत में पुनः जाग्रत करने के लिए माँ का आविर्भाव हुआ है और उन्हें केन्द्र बनाकर फिर से जगत् में गार्गी और मैत्रेयी जैसी नारियों का जन्म होगा। भाई, अभी तुम क्या देख रहे हो, धीरे-धीरे सब समझ जाओगे। इसलिए उनके मठ का होना पहले आवश्यक है।... माँ के न रहने से सर्वनाश हो जायेगा। शक्ति की कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। अमेरिका और यूरोप में क्या देख रहा हूँ? – शक्ति की उपासना। परन्तु वे उसकी उपासना अज्ञानवश इन्द्रियभोग द्वारा करते हैं। फिर जो पवित्रता पूर्वक सात्त्विक भाव द्वारा उसे पूजेंगे, उनका कितना कल्याण होगा। दिन पर दिन सब समझता जा रहा हूँ। मेरी आँखें खुलती जा रही हैं। इसलिए माँ का मठ पहले बनाना पड़ेगा। पहले माँ और उनकी पुत्रियाँ, फिर पिता और उनके पुत्र। क्या तुम यह समझ सकते हो? सभी अच्छे हैं, सबको आशीर्वाद दो। भाई, नाराज न होना, तुम सब में से किसी ने अभी तक माँ को समझ नहीं पाया है। माँ की कृपा मुझ पर पिता की कृपा से लाख गुनी है। माँ की कृपा, माँ का आशीष मेरे लिये सर्वोपरि है। (२/३६०-६१)

वर्तमान युग में अनन्त शक्तिस्वरूपिणी जननी के रूप में ईश्वर की उपासना करना उचित है। इससे पवित्रता का उदय होगा और इस मातृ-पूजा से अमेरिका में महाशक्ति का विकास होगा। यहाँ पर (अमेरिका में) कोई मन्दिर (पौरोहित्य शक्ति) हमारा गला नहीं दबाता और अपेक्षाकृत गरीब देशों के समान यहाँ कोई कष्ट भी नहीं भोगता। स्त्रियों ने सैकड़ों युगों तक दुःख-कष्ट सहन किये हैं, इसी से उनके भीतर असीम धैर्य और अध्यवसाय का विकास हुआ है, वे किसी भी भाव को सहज ही छोड़ना नहीं चाहतीं। इसी हेतु वे अन्धविश्वासी धर्मों एवं सभी देशों के पुरोहितों की मानो आधार हो जाती हैं, यही बाद में उनकी स्वाधीनता का कारण होगा। हमें वेदान्ती होकर वेदान्त के इस महान् भाव को जीवन में परिणत करना होगा। निम्न श्रेणी के मनुष्यों में भी यह भाव वितरित करना होगा – यह केवल स्वाधीन अमेरिका में ही कार्य रूप में परिणत किया जा सकता है। भारत में बुद्ध, शंकर तथा अन्यान्य महामनीषी व्यक्तियों ने इन सभी भावों का लोगों में प्रचार किया था, किन्तु जनता उन भावों को धारण नहीं कर सकी। इस नूतन युग में जनता वेदान्त के आदर्शानुसार जीवन-यापन करेगी और यह स्त्रियों के द्वारा ही कार्य रूप में परिणत होगा ।

शक्ति-पूजा केवल काम-वासनामय नहीं है। यह शक्ति-पूजा कुमारी-सधवा-पूजा है, जैसी हमारे देश में काशी, कालीघाट इत्यादि तीर्थ-स्थानों में होती है, यह काल्पनिक नहीं, वास्तविक शक्ति-पूजा है। किन्तु हम लोगों की पूजा इन तीर्थ-स्थानों में ही होती है और केवल क्षण भर के लिये, पर इन लोगों की पूजा दिन-रात बारहों महीने चलती है। पहले स्त्रियों का आसन होता है। कपड़ा, गहना, भोजन, उच्च स्थान, आदर और स्वागत-सत्कार पहले स्त्रियों की। यह शक्ति-पूजा प्रत्येक नारी की पूजा है, चाहे परिचित हो या अपरिचित। उच्च कुल की और रूपवती युवतियों की तो बात ही क्या है! (१०/९१)

सम्पादकीय

प्रार्थनामयी माँ से है प्रार्थना मेरी

जगज्जननी श्रीमाँ सारदा युगावतार भगवान श्रीरामकृष्णदेव की अवतार लीलासंगिनी थीं। श्रीरामकृष्ण भक्तों को सत्संग, जप-ध्यान और प्रार्थना करने को कहते थे। श्रीमाँ भी भक्तों को जप और प्रार्थना करने को कहती हैं। श्रीमाँ स्वयं प्रतिदिन एक लाख जप करती थीं और रात्रि की नीरवता में प्रार्थना भी करती थीं। हम शास्त्रों में बार-बार पढ़ते हैं कि माँ दुर्गा अपने भक्तों के कल्याणार्थ, उनके दुख-निवारणार्थ रणभूमि से लेकर ज्ञान-प्रदान और वात्सल्य-कृपादि तक सदा तत्पर रहती हैं। श्रीमाँ सारदा अपनी सन्तानों के लिये अन्न-भोजन, वस्त्र से लेकर भगवत्चरणों में समर्पण तक सदैव प्रयत्नशील रहीं। अपनी सन्तानों का कोई भी कष्ट उनके लिये असह्य था। इसके लिये उन्होंने युगावतार और अपने परम प्रेमास्पद भगवान श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना की और उनके दुख को दूर किया। श्रीमाँ का जीवन सदा ईश्वर-समर्पित जीवन रहा। उनका तन-मन-प्राण सदा उनमें तल्लीन रहा। जब भी उन्हें किसी पर कोई संकट दिखता है, तो वे ठाकुर से प्रार्थना करती हैं। प्रार्थनामयी माँ परदुखकातर हो सदा प्रार्थनाशीला हैं।

संघ-स्थापना हेतु प्रार्थना

विश्वविख्यात रामकृष्ण संघ की स्थापना के मूल में श्रीमाँ की करुण प्रार्थना ही है। करुणामूर्ति श्रीमाँ सारदा की अपनी सन्तानों के प्रति करुणा बोधगया में बौद्ध विहार मठ को देखकर अभिव्यक्त हुई। जब वे १८९० में तीर्थाटन हेतु बोधगया गई थीं और वहाँ उन्होंने बौद्ध विहारों के ऐश्वर्य को देखा और अपनी त्यागी सन्तानों के अन्न-वस्त्र के कष्ट को देखा, तो उनका मातृ-हृदय द्रवित हो गया। इसका मार्मिक वर्णन श्रीमाँ के शिष्य 'श्रीमाँ सारदा देवी' नामक पुस्तक के प्रणेता पूज्य स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज इस प्रकार करते हैं – ''सन् १८९० ई. के मार्च में श्रीमाँ बोधगया गयी थीं। उस दिन एक ओर वहाँ के मठ का अतुल ऐश्वर्य देख और दूसरी ओर अपने त्यागी पुत्रों के लिये स्थायी आश्रय का अभाव, अन्न-वस्त्र का अवर्णनीय कष्ट तथा साथ ही मठ के संचालन में अत्यन्त दैहिक कष्ट आदि देख संघ-जननी विचलित हो उठीं। संघ को सुव्यवस्थित रूप से देखने के लिये उनके मन में एक करुण प्रार्थना जाग उठी। बाद में उन्होंने कहा था – ''अहा! इसके लिये ठाकुर के सामने कितना रोई हूँ! कितनी प्रार्थना की हूँ! तभी तो आज उनकी कृपा से ये मठ-वठ जो कुछ है। ठाकुर के देह-त्याग के बाद लड़के संसार त्यागकर कुछ दिन एक स्थान पर निवास किये। इसके बाद सभी स्वाधीन रूप से एक-एक कर इधर-उधर घूमते रहे। उस समय मुझे बड़ा दुख हुआ। ठाकुर के पास प्रार्थना करने लगी – 'ठाकुर, तुम आए, इन कुछ व्यक्तियों के साथ लीला की और आनन्द करके चले गए और बस, सब समाप्त हो गया? तो इतना कष्ट करके आने की क्या आवश्यकता थी? मैंने काशी-वृन्दावन में देखा है, अनेक साधु भीख माँगते और इधर-उधर भटकते रहते हैं। ऐसे साधुओं की तो कमी नहीं है। तुम्हारे नाम पर अपना सब कुछ त्यागकर मेरे बच्चे थोड़े से अन्न के लिए भटकते रहेंगे, यह मुझसे देखा नहीं जाएगा। मेरी तुमसे यही प्रार्थना है कि तुम्हारे नाम पर जो निकलेंगे, उन्हें साधारण खाने-पहनने का अभाव न हो। वे सभी तुम्हें और तुम्हारे उपदेशों तथा भावों को लेकर एक साथ रहेंगे और सांसारिक दुखों से जर्जरित मनुष्य उनके पास आकर तुम्हारी बातें सुनकर शान्ति पायेंगे। इसीलिए तो तुम्हारा यहाँ आना हुआ है। उन्हें इधर-उधर भटकते देख मेरा हृदय व्याकुल हो उठता है।' इसके बाद नरेन ने धीरे-धीरे यह सब किया।''[१]

इस प्रकार हम श्रीमाँ को अपनी सन्तानों के लिये प्रार्थना करते हुये देखते हैं।

चन्द्रमा से प्रार्थना करती हुई श्रीमाँ सारदा

एक दिन जप के समय माँ का ध्यान पावन गंगा की स्वच्छ जलधारा में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की ओर जाता है। तब वे चन्द्रमा से प्रार्थना करती हैं। इस दृश्य का वर्णन स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज ने इन शब्दों में किया है – ''एक दिन श्रीमाँ सारदा ने अपनी भतीजी नलिनी से बातचीत में कहा – ''मैं तेरी अवस्था में कितना काम करती थी। ... वह

सब करती हुई भी नित्य एक लाख जप करती थी।'' इस जप-ध्यान के साथ उनके मन में निरन्तर प्रार्थना भी चलती रहती। रात्रि में जब चन्द्रमा उठता, तब गंगा के स्थिर जल में उसका प्रतिबिम्ब देख वे सजल नयन भगवान से प्रार्थना करतीं – ''चन्द्रमा में भी कलंक है, पर मेरे मन में कोई दाग न रहे।''[२]

एक अन्य प्रसंग में श्रीमाँ कहती हैं – ''परिश्रम करना चाहिए, बिना परिश्रम के क्या कुछ होता है? सांसारिक कार्यों के बीच भी कुछ समय निकालना चाहिए। अरी, मैं अपनी बात क्या बताऊँ? मैं उस समय दक्षिणेश्वर में रात में तीन बजे उठकर जप करने बैठती थी। कोई होश नहीं रहता था। एक दिन चाँदनी-रात में नौबतखाने की सीढ़ी की बगल में बैठकर जप कर रही थी, चारों ओर निस्तब्धता थी। ... ध्यान खूब जम गया था। उस समय मेरा चेहरा दूसरे ही ढंग का था। आभूषण पहने थी, लाल किनारी की साड़ी थी। आँचल हवा से खिसककर उड़ रहा है, मुझे कोई होश नहीं था। ... बेटा योगेन ठाकुर को लोटा में पानी देने गया था, उसने मुझे उस अवस्था में देखा था। वे दिन कितने अपूर्व थे! बेटी! चाँदनी रात में चन्द्रमा की ओर देखती हुई हाथ जोड़कर कहती – ''अपनी ज्योत्स्ना की भाँति मेरा अन्त:करण निर्मल कर दो।''[३]

'माँ की बातें' नामक पुस्तक में भी इस घटना का उल्लेख इसी रूप में मिलता है। माँ कहती हैं – कितने सौभाग्य से यह जन्म मिला है बेटी! खूब भगवान को पुकारे जाओ। ... बेटी! चाँदनी रात में चन्द्रमा की ओर देखते हुए हाथ जोड़कर मैंने कहा है – ''अपनी इस चाँदनी के समान ही मेरा हृदय भी निर्मल कर दो।''

भक्तों की रक्षा हेतु प्रार्थना

एक बार मैमनसिंह से भक्तों का एक दल आया था। उनके दल-प्रमुख पहले से ही श्रीमाँ के शिष्य थे। किन्तु बीमार थे। उन्होंने सोचा कि जयरामबाटी में अधिक दिन रहने से माँ को असुविधा होगी। इसलिये शीघ्र ही वे लोग वापस चले जायेंगे। लेकिन जब वे लोग कामारपुकुर से आये, तो उन्हें बुखार हो गया। चिकित्सा की सुविधा हेतु सेवकों ने उन्हें पालकी से कोआलपाड़ा भेजने की सोची। लेकिन पालकी शाम को पहुँची। रोगी की सुविधा हेतु उन लोगों को वहाँ से भेज दिया गया। लेकिन कुछ देर बाद चारों ओर घने बादल छा गये और मुसलाधार वर्षा होने लगी, आँधी चलने लगी और बिजली भी कड़कने लगी। जब श्रीमाँ ने यह प्रलयंकारी दृश्य देखा, तो वे सन्तान की चिन्ता में व्यग्र हो उठीं। वे आकाश की ओर देखकर बोलीं – ''अरे, मेरे बच्चे का क्या होगा?'' वे वहीं चौकी पर बैठकर करुण स्वर में अश्रुपूरित नेत्रों से श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करने लगीं, ''ठाकुर, मेरे बच्चे की रक्षा करो। दुहाई ठाकुर, जरा आँखें, उठाकर देखो। मेरे बच्चे की रक्षा करो।''[४]

इस प्रकार हम देखते हैं कि जगज्जननी व्यवस्थित संघ-स्थापना के लिये, अपने हृदय की निर्मलता के लिये और भक्तों की रक्षा के लिये स्वयं प्रार्थना कर रही हैं।

श्रीमाँ से एक भक्त ने इन शब्दों मे प्रार्थना की –

प्रार्थनामयी माँ से है प्रार्थना मेरी।
आया हूँ हे माते मैं शरण तुम्हारी ।।
जब रोग-शोक-व्याधि हो जीवन में घनेरी।
हे माते त्वरित हर लो शीघ्र व्यथा हमारी ।।
जब चंचल मन मेरा न लगे प्रभु-भजन में।
तब पकड़ कर लगा उसे प्रभु के चरण में ।।
जब काम-क्रोधादि करे मुझ पर अत्याचार।
तब बनकर रणचण्डी करो मेरा तुम उद्धार ।।
षट्रिपुओं के रण में विजय हो मेरा।
हे माँ लगे शीघ्र ईश्वर में मन मेरा ।।

माँ! थोड़ी-सी प्रार्थना मेरी भी ...

हे माँ! मुझे पूर्ण विश्वास है, तुम कभी भी मुझे छोड़ नहीं सकती, लेकिन मैं प्रतिपल तेरी उस चिन्मयी सत्ता का अपने हृदय में बोध करते हुये आह्लादित रहना चाहता हूँ। माँ, मेरे जीवन को भी शुद्ध, पवित्र और निष्कलंक कर दो। हे माते, मुझे सर्वदा यह सानन्द बोध होता रहे, वह ब्रह्ममयी, चैतन्यमयी ही माँ के रूप में अहर्निश मेरे साथ है। माँ, मुझे किसी प्रकार का कोई कष्ट न हो और मैं सर्वदा तेरे चिन्मय, ज्योतिर्मय दिव्य स्वरूप का चिन्तन-मनन-स्मरण और अनुभव कर सदा आनन्दित रहूँ। माँ, मेरी यह छोटी-सी प्रार्थना है, चाहे तुम करो, चाहे ठाकुर से प्रार्थना कर दो, तुम तो सर्वसमर्थ हो! तुम सब कुछ कर सकती हो। मेरी तो मात्र यह छोटी-सी प्रार्थना है माँ! ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. श्रीमाँ सारदा देवी, स्वामी गम्भीरानन्द, पृ. २५८ **२.** वही, पृष्ठ ९४ **३.** वही, **४.** वही, पृ. २९९

शास्त्रानुसार श्रीमाँ सारदा का दिव्य जीवन

श्रीमाँ सारदा देवी जयन्ती विशेष

स्वामी दयापूर्णानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

स्वामी विवेकानन्द ने १८९४ में अमेरिका से अपने एक गुरुभाई स्वामी शिवानन्द जी को लिखा था, ''शक्ति के बिना जगत का उत्थान सम्भव नहीं है। भारत में उस महाशक्ति को पुनर्जीवित करने के लिए माँ का जन्म हुआ है।'' शास्त्र का उद्घोष है कि आद्याशक्ति महामाया ही समस्त चराचर विश्व में स्थान-काल-पात्रानुसार स्वयं निर्विशेष रूप में अधिष्ठित हैं –

सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः।

उत्सवाः सर्वकालेषु यतः अहं सर्वरूपिणी।।[१]

वेदान्त सिद्धान्त-शास्त्र और तन्त्र साधन-शास्त्र है। मनु संहिता के टीकाकार कुल्लूक भट्ट तन्त्र को श्रुति-परम्परा का बताते हैं – '**वैदिकी तान्त्रिकी चैव द्विविधा कीर्तिता।**' श्रुतिः अर्थात् वेद एवं तन्त्र दोनों ही श्रुति-परम्परा के धारक और वाहक हैं। भगवती श्रुति की मूर्त रूप श्रीचण्डी वेदमूला, परमात्ममयी तथा शक्ति-स्वरूपा हैं। अध्यात्म शास्त्र की परम्परा में वेदमाता ही श्रीचण्डी के रूप में प्रकट हुईं। ब्रह्मशक्ति को ही श्रीचण्डी नाम से कहा जाता है। समग्र तन्त्रशास्त्र का सार श्रीचण्डी में समाहित है। श्रीचण्डी का भी प्रथम चरित्र ऋग्वेद स्वरूप, मध्यम चरित्र यजुर्वेद स्वरूप ओर उत्तर चरित्र सामवेद स्वरूप है। ''ऋग्भिः स्तुवन्ति, यजुर्भिः यजन्ति, सामभिः गायन्ति।'' इस लेख में भी हम श्रीमाँ सारदा देवी के अनुपम जीवन को तीन स्तर पर जानने का प्रयास करेंगे।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में उल्लेख है कि श्रीकृष्ण ने पूर्णिमा के पुण्य अवसर पर श्रीराधा की पूजार्चना की थी। महाभारत में कुरुक्षेत्र-युद्ध के प्रारम्भ में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दुर्गा-प्रार्थना की प्रेरणा दी थी। अज्ञातवास में युधिष्ठिर द्वारा देवी-स्तुति की गयी थी। रामायण में श्रीरामचन्द्र रावण-वध हेतु परमेश्वरी मातृशक्ति के शरणागत हुये थे – **रावणस्य विनाशाय रामस्य अनुग्रहाय च। अकाले बोधिता देवी...** जगतजननी महामाया अपनी लीला में स्वयं भाग लेना चाहती हैं। इससे

लीला में माधुर्य, शक्ति और सौन्दर्य अधिक दृष्टिगोचर होता है। श्रीमाँ सारदा ने एक बार स्वयं कहा था – ''ईश्वर को मनुष्य के रूप में क्रीड़ा करना बहुत प्रिय है।''

सर्वस्वाद्या महालक्ष्मीः त्रिगुणा परमेश्वरी[२]

भारत भूमि के पूर्व भाग बंगाल के शिहर गाँव में श्यामासुन्दरी देवी नामक एक गृहवधू थी। वह एक दिन एक कुम्हार के चूल्हे के पास बेल के पेड़ के नीचे अँधेरे में बैठी थी। अचानक चूल्हे की दिशा से झनझनाहट की आवाज आई और पेड़ की शाखाओं से एक छोटी बच्ची नीचे उतरी। उसने अपने कोमल हाथों से श्यामासुन्दरी के कंधे को लपेटा, जिससे वह बेहोश होकर गिर पड़ी। होश में आने पर उसे लगा जैसे वह छोटी बच्ची उसके गर्भ में प्रवेश कर गई हो। उसके पति श्री रामचन्द्र मुखोपाध्याय कोलकाता में रहते थे। उन्होंने वहाँ सपना देखा कि सुनहरे रंग की एक छोटी लड़की अपनी कोमल बाहों से गले से लिपट गयी। लड़की की अतुलनीय सुन्दरता और अपने अमूल्य आभूषणों के कारण वह सामान्य जन से अलग विशेष लग रही थी। रामचन्द्र को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा, 'तुम कौन हो, बेटा? लड़की ने उनसे कोमल और मधुर स्वर में उत्तर दिया, मैं तुम्हारे पास आई हूँ। श्रीमाँ ने भी भविष्य में किसी

को कहा था, "मैं तुमसे कहती हूँ, मेरी बेटी, इस शरीर को (अपने शरीर की ओर संकेत करते हुए) दिव्य जानो।"

मार्गं क्षेमकरी – इस पुण्य संवाद के पश्चात् शुभ समय के आगमन में अधिक विलम्ब नहीं हुआ। गर्भवती श्यामा सुन्दरी देवी का प्रसव-काल आ गया। वह शीतकालीन संक्रान्ति का दिन था, जब सबसे लम्बी रात समाप्त हो चुकी थी और सूर्य उत्तर दिशा की ओर बढ़ने लगा था। इस दिन देवी-देवता छह महीने की अपनी लम्बी नींद से जागते हैं। भक्तजन काली मन्दिरों के दर्शन करने में व्यस्त थे, क्योंकि इस महीने में ऐसे दर्शन बहु पुण्यदायी माने जाते थे। गुरुवार, २२ दिसम्बर, १८५३ के शुभ दिवस में रामचन्द्र के घर से शंख बजने की ध्वनि ने श्रीसारदामणि के शुभ आविर्भाव की घोषणा की। उस समय दो नाम रखने की प्रथा थी, एक ज्योतिष के अनुसार और दूसरा व्यावहारिक उपयोग हेतु। ज्योतिषी द्वारा उस समय के ग्रहों और नक्षत्रों की स्थिति के अनुसार बच्ची का औपचारिक नाम ठाकुरमणि रखा गया। स्वामी गौरीश्वरानन्द से हमें यह पता चलता है, कि 'क्षेमकरी' उनका वास्तविक सामान्य नाम था। लेकिन उनकी माँ की बहन ने श्यामासुन्दरी देवी से बच्ची का नाम बदलकर सारदा रखने का अनुरोध किया।

श्रीदुर्गासप्तशती के देवी कवच में लिखा है – **पन्थानं सुपथा रक्षेत् मार्गं क्षेमंकरी तथा**।[३] – देवी स्वयं क्षेमकरी के रूप में रहते हुए भक्तजनों का मार्गदर्शन और रक्षा करती हैं। श्रुति प्रदर्शित वह मार्ग है, तमस से ज्योति की ओर, असत् से सत् की ओर एवं मृत्यु से अमृतत्व की ओर। कभी-कभी मार्गदर्शक के रूप में भगवती अम्बा स्वयं ही अपने मातृत्व द्वारा हमारे जीवन-रथ को संचालित करती हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के ध्यान-श्लोक के प्रारम्भ में ही इन्हें भगवती अम्बे के संबोधन से गीता-माता के रूप में प्रणाम किया गया है। सुदीर्घ काल व्यतीत हो चुका है, कितनी रजनी घोर अंधेरे में बीत चुकी है, घनघोर तमोनिशा के पश्चात् ब्रह्ममयी माँ अपनी बिछुड़ी और भटकी संतानों को पुन: सनातन मार्ग पर ले जाने के लिये स्वयं आविर्भूत हुई हैं।

सैषा प्रसन्ना वरदा – उपरोक्त सुकृतिशाली दम्पती के जीवन में ही भगवती महामाया लीला करने, अपना मधुर भाव आस्वादन कराने के लिए अवतार ग्रहण करती हैं। श्रीमाँ प्राय: अपने माता-पिता की प्रशंसा करते हुए कहती थीं, "क्या भगवान वहाँ जन्म लेंगे, जहाँ माता-पिता की प्रबल तपस्या आदि न हो?" अपनी स्नेहमयी पुत्री की अद्भुत अलौकिक स्नेह-छाया की शान्ति से प्रभावित होकर श्यामासुन्दरी देवी ने श्रीमाँ से कहा था, शारदा, अगले जन्म में मुझे तुम्हारी जैसी पुत्री मिले! मैं वास्तव में तुम्हें फिर से पाऊँ, मेरी बेटी! श्रीमाँ के भाई काली मामा ने भी प्रशंसा की थी – 'हमारी बहन लक्ष्मी का अवतार है।' इसीलिए श्रीदुर्गासप्तशती में कहा गया है – **सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये**।[४] – 'वे प्रसन्न होने पर सुखदा और मनुष्य की मुक्ति का कारण बन जाती हैं'। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि पूजा और वंदना द्वारा माता को प्रसन्न किए बिना उनकी पकड़ से बचकर ब्रह्मा और विष्णु में भी मुक्ति पाने की शक्ति नहीं है।

त्वं श्रीः त्वं ईश्वरी – श्रीमाँ की बचपन की संगिनी राज मुखोपाध्याय की बहन अघोरमणि देवी कहती हैं कि एक बार जगद्धात्री देवी की पूजा के समय हलदारपुकुर के रामहृदय घोषाल वहाँ पूजा-मंडप में उपस्थित थे। वे श्रीमाँ को ध्यान में लीन देखकर बहुत देर तक उनकी ओर देखते रहे, परन्तु वे समझ नहीं पाए कि देवी कौन हैं और श्रीमाँ कौन हैं? तब वे भयभीत होकर वहाँ से चले गए। श्रीमाँ के बचपन से ही अलौकिक और दिव्य रूप के दर्शन मिलते हैं, जिसमें पूर्व उल्लेखित दिव्यता – **त्वं श्रीः त्वं ईश्वरी त्वं ह्रीः त्वं बुद्धिः बोधलक्षणा**[५] – की प्रधानता थी। श्यामा सुन्दरी देवी परवर्ती काल में श्रीमाँ को कहती थीं, 'मुझे आश्चर्य है कि तुम वास्तव में कौन हो! अरे मैं तुम्हें कैसे पहचान सकती हूँ, मेरी बेटी!

एषा सा वैष्णवी माया – बाद के जीवन में दूसरे लोग उपरोक्त विषय में चाहे जो भी सोचें, किन्तु श्रीमाँ ने अपने को अधिकांश मानवीय रूप में ही अभिव्यक्त किया था। मानो वे स्वर्ग और पृथ्वी के मिलन-बिन्दु पर खड़ी हों। मानो वे यह निश्चित नहीं की थीं कि उन्हें किस रूप का अधिक प्रकाश करना चाहिए। सम्भवत: प्रारम्भिक दिनों को अधिकांश दिव्य रूप का प्रकाश ही मानना चाहिये। कहा गया है – एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।[६]

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे[७]

श्रीमाँ सारदा उन दिनों की घटनाओं को याद कर कहती थीं, देखो, जब मैं बच्ची थी, तो मैंने देखा कि मेरी आयु की एक लड़की हमेशा मेरे साथ रहती थी। मेरे काम में

मेरी सहायता करती थी, मेरे साथ खेलती थी, लेकिन दूसरे लोगों के आते ही वह लुप्त हो जाती थी। यह तब तक चलता रहा, जब तक मैं दस या ग्यारह साल की नहीं हो गई।' जब माँ गाय को खिलाने के लिए घास काटने पानी में जाती थीं, तो उनकी ही आयु की एक लड़की आकर माँ के द्वारा काटे हुये घास को किनारे रखती थी। उदाहरणार्थ चण्ड-मुण्ड के वध के समय श्रीचंडिका देवी की सहायता के लिए उनसे अभिन्न काली या चामुण्डा देवी आविर्भूत होती हैं। रक्तबीज असुर के नाश के समय भी श्रीचामुण्डा काली ने पुन: अपनी लीला की थी।

भक्तों ने श्रीमाँ से एक अलौकिक घटना के बारे में सुना, जो उनके साथ तब घटी, जब वे श्रीरामकृष्ण से विवाह करने के उपरान्त तेरह वर्ष की आयु में कामारपुकुर में थीं। श्रीरामकृष्ण के घर के ठीक पीछे एक सड़क थी। महिलाओं के आने-जाने के लिये घर का एक पिछला दरवाजा उसमें खुलता था। बड़ा हलदारपुकुर तालाब दूर था, जहाँ माँ स्नान करने और पानी लाने जाती थीं। रास्ता गाँव की सड़क के पार और कुछ घरों के पास से गुजरता था। पिछले दरवाजे से बाहर निकलते हुए श्रीमाँ ने सोचा, 'मैं एक नवविवाहिता वधू हूँ। मैं अकेले स्नान के लिए कैसे जा सकती हूँ?'' जब वे संकोच में खड़ी थीं, तो उन्होंने देखा कि आठ लड़कियाँ उनकी ओर आ रही हैं। यह देखकर श्रीमाँ भी सड़क पर आ गईं। उनमें से चार लड़कियाँ उनसे आगे और चार पीछे चलने लगीं। इस प्रकार वे सभी तालाब में जाकर स्नान कीं और उसी तरह वापस आ गईं। ऐसा प्रतिदिन होता रहा, जब तक माँ वहाँ थीं।

जब माँ अपने पति के पास दक्षिणेश्वर आते समय मार्ग में बीमार होकर लेटी थीं, तो उन्होंने देखा कि एक सुन्दर काली वर्ण की बालिका उनके पास बैठी है और अपने कोमल, शीतल हाथों से उनके सिर और शरीर को सहला रही है। ऐसा करने से उनके शरीर का सारा दर्द दूर हो गया। श्रीमाँ ने उससे पूछा, 'तुम कहाँ से आई हो, माँ? उस कन्या ने उत्तर दिया, ''मैं दक्षिणेश्वर से आयी हूँ। तुम चिन्ता मत करो। तुम अवश्य दक्षिणेश्वर जाओगी, तुम शीघ्र ही ठीक हो जाओगी और उन्हें देखोगी।' तुम्हारे लिए ही मैं उन्हें वहाँ रोक कर रखी हूँ।'' श्रीमाँ ने कहा, 'अरे, तुम हमारी कौन हो? उसने कहा, 'मैं तुम्हारी बहन हूँ।'' माँ ने उत्तर दिया, 'हाँ, इसीलिए तो तुम आई हो।'' इस घटना से श्रीमाँ कौन थीं, यह सिद्ध होता है।

इन्द्रियाणां अधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या[८]

१८६७ में दीर्घ आध्यात्मिक साधना के उपरान्त श्रीरामकृष्ण कामारपुकुर आये और श्रीमाँ भी वहीं आईं। श्रीठाकुर के संन्यास-गुरु तोतापुरीजी ने उनसे कहा था, ''वास्तव में वही पुरुष ब्रह्म में स्थित है, जिसका त्याग, वैराग्य, विवेक और आत्मज्ञान उसकी पत्नी की उपस्थिति में भी पूर्ण रूप से अप्रभावित रहता है। वही सच्चा ब्रह्मज्ञानी है, जो सदा पुरुष और महिला दोनों को आत्मा के रूप में देखता है और उनके साथ उसी के अनुसार व्यवहार करता है। जो लोग महिला-पुरुष को भेद-भाव से देखते हैं, वे भले ही आत्मसाक्षात्कार के मार्ग पर चल रहे हों, लेकिन वे अभी लक्ष्य से बहुत दूर हैं।'' बाद में दक्षिणेश्वर में रहते समय पहले कुछ काल तक श्रीमाँ दिनभर नहबत में रहकर सारा कार्य करती थीं, लेकिन रात में श्रीरामकृष्ण के कमरे में ही रहती थीं। ऐसे ही एक क्षण में श्रीरामकृष्ण ने उनसे पूछा, 'अच्छा, क्या तुम मुझे संसार में खींचने आई हो?' श्रीमाँ ने तुरन्त नि:संकोच उत्तर दिया, 'नहीं। मैं तुम्हें संसार-मार्ग में क्यों खींचू? मैं तुम्हारे अभीष्ट मार्ग में तुम्हारी सहायता करने आई हूँ।' हम सोचते होंगे कि सम्भवत: श्रीठाकुर ने ही श्रीमाँ को यह शिक्षा दी होगी, किन्तु श्रीमाँ के मुख से यह वाणी सुनकर यही प्रतीत होता है कि 'क्षेमकरी' रूप में श्रीमाँ ने ही श्रीरामकृष्ण की रक्षा की थी और उनकी साधना का मार्ग प्रशस्त किया था।

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि हम श्रीचंडी में पढ़ते हैं, 'हे माते! हम आपको नमस्कार करते हैं, जो सभी प्राणियों में शान्ति के रूप में निवास करती हैं। हे माते, हम आपको नमस्कार करते हैं, जो सभी प्राणियों में पवित्रता के रूप में निवास करती हैं।'' साथ ही हम उन्हें सर्वरूपस्वरूपिणी कहते हुए उपनिषद में देखते हैं, 'यह सब आनन्द मार्ग है, हे गार्गी, जहाँ भी आनन्द है, वहाँ ईश्वर का एक अंश है।' इसी श्रुति वचन की सत्यता प्रकट करते हुए श्रीमाँ ने कहा था, 'उस समय से मुझे हमेशा ऐसा लगता था, जैसे मेरे हृदय में आनन्द का पूर्ण घड़ा रखा हुआ है। मेरा मन उस अचल, अपरिवर्तनीय एवं दिव्य आनन्द में कितना और किस प्रकार डूबा रहता था, यह बात दूसरे को बोलकर

समझाना बहुत कठिन है।'

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा[९]

दक्षिणेश्वर में ५ जून, १८७२ की अमावस्या में फलहारिणी-काली-पूजा के दिन श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ की देवी षोडशी के रूप में पूजा की थी। पहले ही बताया गया है कि श्रीकृष्ण ने कार्तिक पूर्णिमा के अवसर पर योगमाया महाशक्ति श्रीराधा की आराधना की थी। आद्याशक्ति महामाया के काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमस्ता, भैरवी, धूमावती, बगला, मातंगी और कमला, ये दस महाविद्या रूप सुप्रसिद्ध हैं। कुछ शास्त्रों में उनके दूसरे नाम और अधिकाधिक संख्या बतायी गयी है। नारद पञ्चरात्र में महाविद्या को असंख्य कहा गया है। मानव-देह के प्रत्येक अंग में एवं विश्व की प्रत्येक वस्तु में माँ स्वयं ही अकेले विद्यमान हैं। फिर भी नारी-मूर्ति में उनका अधिकाधिक प्रकाश है। माँ के अंश से ही हर एक नारी का जन्म हुआ है। समस्त नारी-मूर्ति जगदम्बा का प्रत्यक्ष विग्रह है। प्रत्येक नारी में मातृभाव देखना ही महामाया की श्रेष्ठ उपासना है। इसलिए श्रीरामकृष्ण ने श्रीमाँ सारदा की जगज्जननी के रूप में पूजा, अर्चना, आराधना की थी। उन्होंने स्वयं को, अपनी जप-माला को और साधना के फल सहित अन्य सहायक उपकरणों को श्रीमाँ के चरणों में समर्पित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने अपनी गहन आध्यात्मिक साधना का समापन किया था।

श्रीरामकृष्ण के पूर्व में रामप्रसाद, कमलाकान्त, राजा रामकृष्ण राय आदि शक्ति के उपासक बंगभूमि में साधना कर चुके हैं। महासिद्ध सारतन्त्र में उल्लेख है कि यह समग्र जगत, यह पृथ्वी विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता और अश्वक्रान्ता, इन तीन भाग में विभक्त थी। शक्ति मंगलतन्त्र के अनुसार भारत भूमि भी तीन भाग में विभक्त है। विन्ध्याचल से पूर्व में चट्टल भूमि (चिटगाँव) तक विष्णुक्रान्ता, विंध्याचल से दक्षिण में कन्याकुमारी तक अश्वक्रान्ता या गजक्रान्ता एवं विन्ध्याचल से उत्तर में नेपाल, महाचीन (चाइना) तक रथक्रान्ता। प्रति क्रान्ता में ६४-६४ कुल १९२ तन्त्र समग्र भारत भूमि पर प्रचलित था। भैरवी ब्राह्मणी का उपदेश ग्रहण कर श्रीरामकृष्ण ने विष्णुक्रान्ता में प्रचलित ६४ तन्त्रों की सभी साधनाओं को करके उनमें सिद्धि प्राप्त की थी। एक रात श्रीमाँ ने श्रीरामकृष्ण के चरण दबाते हुए पूछा था, मानो उनकी सिद्धि की परीक्षा ले रही हों, तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो? श्रीरामकृष्ण ने सिद्धिदात्री को सही उत्तर देकर प्रसन्न किया, 'जो माँ मन्दिर में विराजित हैं, उन्होंने ही इस शरीर को जन्म दिया है, जो नहबतखाने में निवास कर रही हैं और वे ही इस समय मेरी पदसेवा कर रही हैं। सच कहता हूँ, मैं तुम्हें साक्षात् आनन्दमयी के रूप में ही देखता हूँ।' श्रीरामकृष्ण के संन्यास-गुरु श्री तोतापुरीजी आदि शंकराचार्य के दसनामी सम्प्रदाय की परम्परा से थे। शंकराचार्यजी ने संन्यासियों के लिये भारत के चार कोनों पर चार मठ स्थापित किया। उन्होंने दशनामी सम्प्रदाय की स्थापना की, जिनके नाम हैं – पुरी, गिरि, भारती, तीर्थ, बाण, अरण्य, पर्वत, आश्रम, सागर और सरस्वती। पुरी सम्प्रदाय के संन्यासियों का मूल मठ शृंगेरी में है। प्रत्येक सम्प्रदाय में विभिन्न देवी-देवता होते हैं। पुरी सम्प्रदाय की प्रमुख देवी कामाक्षी दक्षिण भारत के कांचीपुरम में हैं। उस मन्दिर में देवी की षोडशी मूर्ति है। षोडशी देवी के अन्य नाम हैं, राजराजेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी या श्रीविद्या। तोडल-तन्त्र दस महाविद्याओं को विष्णु के दस अवतारों से जोड़ता है, जिनमें से षोडशी देवी परशुराम से सम्बन्धित हैं। पर गुहपति गुहप-तन्त्र दस महाविद्याओं को दशावतार से अलग ढंग से जोड़ता है। वह कहता है कि महाविद्याएँ विष्णु के सारे अवतार की स्रोत हैं। वहाँ षोडशी को कल्कि अवतार के साथ सम्बन्धित कहा गया है।

स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु[१०]

दक्षिण भारत में श्रीविद्या की पूजा विशेष रूप से प्रचलित है। बंगाल में जो पूजा प्रचलित है, उसे कालीकुल उपासना कहते हैं और दक्षिण भारत में जो पूजा प्रचलित है, उसे श्रीकुल उपासना कहते हैं। दक्षिण भारत के शृंगेरी मठ में आदिशंकराचार्य ने श्रीयन्त्र को स्थापित कर उसकी प्रतिदिन पूजा की व्यवस्था की। काँचीपुरम में उन्होंने कामाक्षी देवी की प्रतिष्ठा की। वहाँ भी उन्होंने श्रीयन्त्र की स्थापना की। जैसाकि पहले बताया जा चुका है, देवी षोडशी, जिन्हें कामाक्षी, त्रिपुरसुन्दरी या श्रीविद्या भी कहा जाता है, पुरी सम्प्रदाय के संन्यासियों की अधिष्ठात्री इष्ट देवी हैं। वेदान्त सिद्धान्तशास्त्र और तन्त्र साधनशास्त्र है। सभी साधनाएँ मूलत: शक्ति की ही साधना हैं। शक्ति की साधना का दूसरा नाम तान्त्रिक साधना है। कोई भी साधना, जो तन्त्र की दार्शनिक

शेष भाग पृष्ठ ५६१ पर

श्रीमाँ सारदा देवी
जयन्ती विशेष

अन्नदायिनी ब्रह्मज्ञान-प्रदायिनी श्रीमाँ सारदा

रीता घोष, बैंगलुरु

इस धरती पर जीवन का आधार अन्न को माना गया है। अन्न से ही जीव की उत्पत्ति होती है और अन्न द्वारा वह प्रतिपालित होता है। चाहे वह छोटा या बड़ा कैसा भी प्राणी हो, परन्तु उसका सम्पूर्ण जीवन अन्न पर ही केन्द्रीभूत होता है। अन्न की महत्ता को तैत्तिरीय उपनिषद में इस प्रकार से वर्णन किया गया है – 'पृथ्वी लोक में निवास करनेवाले जितने भी प्राणी हैं, वे सभी अन्न से उत्पन्न हुए हैं, अन्न के परिणामस्वरूप रज और वीर्य से ही उनका पालन-पोषण होता है, अन्न से ही वे जीते हैं और अन्त में अन्न उत्पन्न करनेवाली पृथ्वी में ही विलीन हो जाते हैं।' तात्पर्य यह है कि समस्त प्राणियों का जन्म-मरण स्थूल शरीर-रूप में होता है और वह स्थूल शरीर अन्न से उत्पन्न होता है। इस प्रकार अन्न समस्त प्राणियों की उत्पत्ति का आदि कारण है। इसलिए यह श्रेष्ठ है। यह सर्वोषधिमय कहलाता है। क्योंकि इसी से प्राणियों का क्षुधाजन्य सन्ताप दूर होता है। प्राणियों के सारे संतापों का मूल क्षुधा है, इसके शान्त होने पर प्राणियों के सारे संताप दूर हो जाते हैं।

जन्म मात्र से ही जीवों में क्षुधा या भोजनेच्छा जाग्रत रहती है। अन्नमय कोश द्वारा रचित स्थूल शरीर में स्वस्थ अवस्था में स्थूल आहार के लिए भोजनेच्छा रहती है। जीव के अन्य चारों कोशों में भी उनकी अवस्थानुसार क्षुधा की अभिव्यक्ति होती है, जैसे प्राणमय कोश का आहार जीवनीशक्ति है, मनोमय कोश का आहार चिन्तन-विचार है, विज्ञानमय कोश का ज्ञान एवं आनन्दमय कोश का प्रीति-हर्ष इत्यादि होता है। इस प्रकार पंचकोशों के द्वारा विभिन्न प्रकार का आहार ग्रहण करते हुए जीव उस परम सत्ता की ओर अग्रसर होता है।

श्रीमाँ सारदा का ब्रह्म–स्वरूप

श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – 'कलि में जीव अन्नगतप्राण हैं,' 'खाली पेट धर्म नहीं होता'। जीव अन्न रूपी क्षुधा, भोग-वासना रूपी क्षुधा आदि संस्कारों से ग्रसित होकर,

पृथ्वी लोक में जन्म लेता है और इन वासनाओं की तृप्ति न होने तक भटकता रहता है। जीव की इस क्षुधा-निवृत्ति के लिए ही वह परमा शक्ति इस धरा पर मातृ रूप में आर्विभूत होती हैं तथा उसे सब प्रकार से तृप्त कर उसे उर्ध्व गति प्रदान करती हैं ।

चण्डी में मेधस् ऋषि राजा सुरथ को कहते हैं –

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा ।
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।।

अर्थात् वे जगन्मूर्तिस्वरूपा सर्वव्यापी महामाया जन्मादिरहित एवं नित्य होने पर भी प्राय: भक्तों की कार्यसिद्धि के लिए कभी-कभी पृथ्वी लोक में आर्विभूत होती हैं, जब वे आर्विभूत होती हैं, तब नित्य होने पर भी उन्हें 'उत्पन्न' अथवा अवतरित कहा जाता है।

मातृरूप में प्रकाशित यह शक्ति ही परम ब्रह्म है। श्रीरामकृष्ण देव कहते हैं – 'जिन्हें तुम ब्रह्म कहते हो, उन्हें ही मैं काली कहता हूँ। काली और ब्रह्म एक ही है।' श्रीमाँ सारदा ने भक्तों के सम्मुख कई बार स्वयं कहा – 'मैं ही काली हूँ।' अर्थात् श्रीमाँ ने स्वयं का ब्रह्मत्व स्वीकार किया है। श्रीमाँ सारदा के दिव्य अलौकिक जीवन-चरित्र का विश्लेषण करना अत्यन्त कठिन है। स्वयं श्रीरामकृष्ण देव ने माँ के स्वरूप के बारे में संकेत देते हुए कहा है – ''**अनन्त राधार माया कहिने न जाय**।...'' अर्थात् श्रीराधा की अनन्त माया का वर्णन नहीं किया जा सकता है।

इस जगत में ब्रह्मशक्ति का आविर्भाव युगावतार के लोक-कल्याण-कार्य को पूर्ण करने के लिए होता है। युगावतार जब धरती पर आते हैं, तो वे अपनी शक्ति को भी साथ लेकर आते हैं। श्रीमाँ सारदा का अवतरण श्रीरामकृष्ण देव के कार्य को साकार करने के लिए हुआ था। काशीपुर के भवन में रहते समय अस्वस्थ श्रीरामकृष्ण देव ने अपने तिरोधान से पूर्व, सारदा देवी की भूमिका के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए श्रीमाँ को उनके स्वयं के ब्रह्मशक्ति का स्मरण दिलाया तथा गुरु रूप में कर्म करने की प्रेरणा देते हुए उन्हें जीवोद्धार-व्रत ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। अपने अपूर्ण कार्य को श्रीमाँ को अर्पण करते हुए महाप्रस्थान से पूर्व ठाकुर ने उनसे कहा – 'क्या तुम कुछ भी नहीं करोगी?' अपनी ओर संकेत करते हुए उन्होंने माँ से कहा – 'क्या यही सब कुछ करेगा?' नारी-सुलभ लज्जा एवं संकोच में श्रीमाँ ने कहा – ''मैं नारी हूँ, क्या कर सकती हूँ?'' ठाकुर ने तत्क्षण कहा – 'नहीं, नहीं तुम्हें इससे भी अधिक बहुत कुछ करना होगा।'

अन्य एक दिन ठाकुर ने श्रीमाँ से कहा – ''कोलकाता के लोग अन्धकार में कीड़े के समान किलबिला रहे हैं। तुम इन लोगों को देखना।'' – श्रीठाकुर की दिव्य दृष्टि की सत्यता परवर्ती काल में सर्वथा सत्य प्रमाणित हुई। ठाकुर के अन्तर्धान के पश्चात् भवतारिणी करुणेश्वरी श्रीमाँ सारदा ने श्रीठाकुर के लोकोद्धार-यज्ञ को सम्पूर्ण करने के लिए ३४ वर्षों तक इस लोक में विराज किया और ईश्वर-अनुसन्धित्सु सहस्र पिपासुओं की आध्यात्मिक तृष्णा को परितृप्त किया। श्रीरामकृष्ण के महाप्रयाण के पश्चात् उनके शिष्यों-भक्तों के लिए वे प्रेरणा स्रोत बनकर उन्हें सिंचती रहीं। श्रीमाँ श्रीरामकृष्ण-भावधारा की अदृश्य संचालिका शक्ति के रूप में विद्यमान रहीं। जाति, कुल और धर्म के परे सभी श्रेणी के नर-नारियों के प्रति उनकी दृष्टि उदार और समान थी। सबके लिये अपना स्नेहांचल का आश्रय प्रदान करना केवल उनके लिए ही सम्भव है, जो स्वयं ब्रह्मस्वरूपिणी, चिन्मयी निखिलाधीश्वरी हों।

वास्तव में श्रीमाँ सारदा के प्रकृत स्वरूप की धारणा करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं था। केवल श्रीरामकृष्ण देव को ही सारदा-स्वरूप का ज्ञान था। तभी तो श्रीरामकृष्ण ने दक्षिणेश्वर आने के पश्चात् अमावस्या फलहारिणी पूजा के दिन अपनी पत्नी सारदा देवी को 'देवी' के आसन में प्रतिष्ठित कर निम्नलिखित प्रार्थना से उनके सुप्त ब्रह्मस्वरूप को जाग्रत किया था – ''हे बाले, हे सर्वशक्ति की अधीश्वरी मात: त्रिपुर सुन्दरी, सिद्धि-द्वार उन्मुक्त करके इनके शरीर-मन को पवित्र कर इनमें आर्विभूत होकर सर्व-कल्याण साधन करो''– इस प्रार्थना के साथ श्रीठाकुर ने अपनी सम्पूर्ण साधना, जपमाला इत्यादि सब कुछ श्रीमाँ सारदा को समर्पित कर दिया था। यह स्वत: सिद्ध है कि सारदा देवी उस महाशक्ति को धारण करने में सक्षम अवश्य रही होंगी। जगत के साधना के इतिहास में यह घटना एक दुर्लभ दृष्टान्त है।

श्रीमाँ सारदा वही महामाया हैं, जिनकी कृपा के बिना जीव मोक्ष-मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता, महामाया के

द्वार छोड़ने पर ही सच्चिदानन्द का दर्शन सम्भव हो पाता है। श्रीरामकृष्ण देव एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे कहते हैं – ''महामाया की दया चाहिए। इसीलिए शक्ति की उपासना की जाती है, देखो न... पास ही भगवान हैं, फिर भी उन्हें जानने के लिए कोई उपाय नहीं है, बीच में महामाया जो हैं। राम, सीता और लक्ष्मण जा रहे हैं। आगे राम हैं, बीच में सीता अर्थात् महामाया हैं और पीछे लक्ष्मण हैं। राम बस ढाई हाथ दूर हैं फिर भी लक्ष्मण अर्थात् सामान्य मनुष्य जो महामाया की माया में आवर्तित होता रहता है, भगवान को देखने से वंचित रह जाता है।

भक्तों की दृष्टि में ब्रह्मवादिनी माँ

पराशक्तिधारिणी विश्वाधिष्ठिता चिन्मयी सारदा देवी को समझना या पहचानना कठिन था। क्योंकि शक्ति का अर्थ है ऐश्वर्य या विभूति। परन्तु उसे सम्पूर्ण रूप से लुप्त कर इस प्रकार जगत में संलग्न रहना इसके पहले कहीं देखा नहीं गया है। फिर भी कभी-कभी अवगुण्ठन हट गया या लज्जापटावृता का आवरण उन्मोचित हो गया, तब स्वरूप प्रकाशित हुआ है। '**अहमेव स्वयंमिदं वदामि**' – मैंने स्वयं यह बताया है – आत्मपरिचय कभी-कभी उन्होंने दिया है।

श्रीमाँ के विषय में स्वामी विवेकानन्द ने अपने पत्र में गुरु भाइयों को लिखा था – ''ठाकुरानी (श्रीमाँ) क्या वस्तु हैं, तुम लोग समझ नहीं पाओगे''– स्वामीजी माँ सारदा देवी को चिन्मयी दुर्गा कहा करते थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने कहा था – ''श्रीमाँ को समझना बड़ा कठिन है। घूँघट की आड़ में सामान्य स्त्री जैसी रहती हैं, पर वे साक्षात् 'जगदम्बा' हैं, यदि श्रीठाकुर नहीं बताते, तो हमलोग कभी भी माँ को पहचान नहीं पाते।''

महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द) जी एक दिन की घटना के विषय में उल्लेख करते हुए कहते हैं – ''एक दिन स्वयं श्रीठाकुर ने मुझसे कहा था कि वहाँ (नहबत में) जो है और इस मन्दिर में भवतारिणी (देवी); दोनों एक ही हैं।'' शिवानन्दजी और भी कहते हैं, ''जिसने भी श्रीमाँ सारदा देवी का दर्शन किया है, वह मुक्त हो जाएगा। माँ का दर्शन क्या कम सौभाग्य की बात है!''

स्वामी योगानन्द के जीवन की एक घटना है – एक दिन श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें (योगीन – स्वामी योगानन्द जी को) नहबत में ले जाकर श्रीमाँ को दिखाकर कहा – इनका चरण पकड़कर पड़े रहो, उससे ही तुम्हारा सब कुछ हो जायेगा।'' स्वामी योगानन्द जी श्रीमाँ को कभी भी मानवी रूप में नहीं देखते थे। देहधारिणी आद्याशक्ति के रूप में वे माँ को पूजते थे तथा उनकी सेवा में प्रत्येक कार्य जगज्जननी की उपासना के भाव से करते थे।

स्वामी विवेकानन्द के गुरुभाई स्वामी सारदानन्द जी महाराज स्वयं को श्रीमाँ का सेवक अथवा चौकीदार कहते थे। श्रीरामकृष्ण की लीलासंगिनी श्रीमाँ सारदा देवी की ईश्वरीय सत्ता के सम्बन्ध में वे नि:सन्देह थे। श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग के रचयिता स्वामी सारदानन्द जी का पूर्ण विश्वास था कि सर्वविद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती इस बार सारदा देवी के रूप में भक्तों को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने के लिए जगत् में अवतीर्ण हुई हैं।

श्रीरामकृष्ण देव के गृही भक्त प्रख्यात नाट्यकार गिरीशचन्द्र घोष कहते थे – ''भगवान हमलोगों जैसा ही मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं, यह विश्वास करना कठिन है। क्या तुमलोग कल्पना कर सकते हो, तुम्हारे सम्मुख ग्रामवासिनी के वेष में साक्षात् श्रीजगदम्बा खड़ी हैं, तुमलोग क्या धारणा कर सकते हो कि महामाई सामान्य स्त्री रूप में घर-संसार का सारा कार्य कर रहीं हैं, किन्तु वही जगज्जननी महामाया आद्याशक्ति सर्वजीवों की मुक्ति हेतु एवं मातृत्व के आदर्श की स्थापना करने के लिये जगत् में आविर्भूत हुई हैं।'' स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज भी अपने सभी पत्रों में 'माँ ब्रह्ममयी' कहकर उन्हें सम्बोधित करते थे।

अन्तर्वासिनी श्रीमाँ की भावसमाधि आदि भावों के ऐश्वर्य का प्रकाश सर्वदा लोकचक्षु के अन्तराल में रहता था। इस प्रसंग में श्रीमाँ ने स्वयं एक बार कहा था – ''मेरा मन रात-दिन उच्चावस्था में रहना चाहता है, किन्तु दयावशात् इनलोगों के लिये बलपूर्वक मैं उसे निम्नभूमि पर रखती हूँ।''

स्वामी प्रेमानन्द जी जो पूर्णत: श्रीमाँ पर ही निर्भर रहते थे, वे कहते हैं – ''श्रीश्रीमाँ को कौन समझ पाया है? श्रीठाकुर का विद्या का ऐश्वर्य था, परन्तु श्रीमाँ का विद्या का ऐश्वर्य भी लुप्त है, कैसी महाशक्ति हैं?''

अन्नदायिनी श्रीमाँ सारदा

ब्रह्मवादिनी श्रीमाँ का दूसरा रूप अन्न-प्रदायिनी, स्नेह-वत्सला मातृरूप है, जो भक्तों के बीच अधिक सुपरिचित है। भक्त-सन्तानों के लिए माँ सारदा एक जन्मदायिनी सामान्य

जननी जैसी ही स्नेहमयी थीं। जयरामबाटी (श्रीमाँ का गाँव, जहाँ वे अधिकतर समय रहा करती थीं) अथवा कोलकाता का दक्षिणेश्वर (काली मन्दिर, जहाँ श्रीठाकुर रहते थे); इन दोनों स्थानों में रहते समय माँ सारदा एक अत्यन्त सामान्य गृहवधू जैसी ही घर के सभी कार्य किया करती थीं तथा भोजन बनाती थीं। भक्तों तथा परिवारजनों की सेवा तथा उन सबकी क्षुधा-निवृत्ति हेतु वे अत्यधिक परिश्रम करती थीं। भूखों को अन्न द्वारा सन्तुष्ट कर उन्हें तृप्त देखकर माँ सारदा का मातृहृदय प्रेम एवं आनन्द से परिपूर्ण हो जाता था। वे सन्तानों तथा गृह के प्रत्येक प्राणी को भोजन कराकर उन्हें सन्तुष्ट देखने के पश्चात् ही स्वयं भोजन करती थीं।

जयरामबाटी में माँ से मिलने आनेवाला भक्त हो अथवा कोई दीक्षार्थी, माँ उसे सर्वप्रथम यत्नपूर्वक बैठातीं, जलपान करवातीं, तत्पश्चात् स्नानादि के बाद स्वयं उसे परोस कर खाना खिलाती थीं। भक्तों के लिये तरह-तरह के व्यंजन आदि भी स्वयं बनाती थीं। भक्त के पूर्ण तृप्त होने के बाद वे दूसरे दिन दीक्षा देती थीं। माँ जानती थीं कि खाली पेट धर्म नहीं होता, अत: क्षुधा की तृप्ति होना अत्यावश्यक है।

दक्षिणेश्वर में रहते समय नहबतखाने के उस छोटे से कमरे में श्रीमाँ अपने सम्पूर्ण संसार के साथ वहाँ विराजती थीं। उन दिनों माँ सारदा अपार आनन्द और शान्ति में पति श्रीरामकृष्ण देव की सेवा में लगी रहती थीं। ठाकुर के पास आनेवाले भक्तों की पंक्ति लगी रहती थी। माँ सारदा दिन भर ठाकुर तथा उनके भक्तों की रुचि के अनुसार जैसे ठाकुर के लिए सादा भोजन तथा नरेन्द्र आदि भक्तों के लिये उनकी रुचि का चने की दाल व मोटी-मोटी रोटियाँ बनाने में व्यस्त रहती थीं। माँ जानती थीं, किसको क्या पसन्द है।

सबको खिलाने एवं तृप्त करने के लिये माँ सारदा प्रसन्नता से प्रात:काल से लेकर दिनभर अथक परिश्रम करती थीं। खिलाने-पिलाने में कठोरता माँ को पसन्द नहीं था। वे कहती थीं – ''मेरे बच्चे खूब खायेंगे एवं आनन्द करेंगे।'' संतान को उदास देखना माँ के लिए अत्यन्त कष्टप्रद था। दक्षिणेश्वर में घटित श्रीठाकुर एवं श्रीमाँ सारदा की एक घटना यहाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय है – श्रीरामकृष्ण देव अपने त्यागी शिष्यों के आध्यात्मिक जीवन के गठन के लिये विशेष रूप से सचेष्ट रहा करते थे। इसलिए उन्होंने माँ सारदा को यह बता दिया था कि रात के खाने में किसको कितनी रोटी देनी है। क्योंकि अधिक भोजन करने से साधन-भजन में बाधा आ सकती है। एक दिन बाबूराम को पूछने पर ठाकुर को पता चला कि वह कुछ अधिक रोटियाँ खाया था एवं इसके लिए जिम्मेदार श्रीमाँ थीं। अत: क्षुब्ध होकर ठाकुर माँ के पास जाकर उलाहना देने लगे कि वह अधिक रोटियाँ खिलाकर बालकों का भविष्य नष्ट कर रही हैं। ठाकुर के इस उलाहने पर माँ सारदा ने अविचलित रहते हुए उत्तर दिया – ''वह दो रोटियाँ अधिक खा लिया, इसलिए आप इतने चिन्तित हैं, उनका भविष्य मैं देखूँगी।'' माँ सारदा के इस कथन से श्रीरामकृष्ण देव अत्यन्त प्रसन्न हुए। क्योंकि ऐसा कहकर श्रीमाँ भक्तों का भार स्वयं लेने के लिए वचनबद्ध हुईं। इस घटना से श्रीमाँ का ब्रह्मस्वरूप गुरु रूप प्रकाशित होता है। श्रीरामकृष्ण देव गुरु रूप में शिष्य को लक्ष्य तक पहुँचाने के लिए व्यग्र थे। इसलिये वे शिष्य को आधा पेट भोजन करवाकर भी रख सकते थे। दूसरी ओर श्रीमाँ सारदा संतान का कल्याण चाहते हुए भी उसे आधा पेट भोजन करवाकर रखने के लिए सहमत नहीं थीं। श्रीमाँ के लिए वात्सल्य-प्रेम का पलड़ा आध्यात्मिकता के पलड़े से भारी था। इसलिए जीवोद्धारिणी माता मुक्त कण्ठ से उद्घोषणा करती हैं – 'सन्तानों का भविष्य मैं देखूँगी।' ऐसा हुआ भी। परवर्ती काल में श्रीमाँ के कृपा-धन्य सहस्रों सन्तानों ने उनसे मन्त्र-दीक्षा प्राप्त कर ताप-दग्ध जीवन में शान्ति-वारि का अनुभव किया।

दक्षिणेश्वर की एक अन्य घटना है – एक दिन श्रीरामकृष्ण देव के सेवक लाटू (स्वामी अद्भुतानन्द जी) पंचवटी में ध्यान में लीन थे। जब ठाकुर ने

लाटू को वहाँ ध्यानमग्न देखा, तो उन्हें बुलाकर कहा – ''अरे तू जिनके ध्यान में मग्न है, वह तो नहबत में आटा गूँथ रही है।'' उन्होंने लाटू को श्रीमाँ के कार्यों में सहायता करने के लिये निर्देश देते हुये कहा – ''इसी से तेरी अभीष्ट सिद्धि होगी।'' इस प्रकार ठाकुर ने श्रीमाँ के भगवती स्वरूप को इंगित करते हुए उनके सेवार्थ लाटू को प्रेरित किया।

श्रीमाँ के अन्नदायिनी रूप का माहात्म्य स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज के लिखे एक पत्र में मिलता है। वे उस समय काशी में थे। सन् १९१८ में काशी में अन्नकूट उत्सव के पश्चात् स्वामी सुबोधानन्द जी महाराज ने एक पत्र में लिखा – ''यहाँ (काशी) के पुजारी सभी नकली अन्नकूट करते हैं और जो असली जगज्जनी हैं, उनका अन्नकूट कितना विशाल है! वह समस्त जगत् के मनुष्य तथा प्राणियों को भोजन कराती हैं।''

मायया बहुरूपिणी – शास्त्रों में कहा गया है – ''**निराकाराऽपि साकारा कस्त्वां वेदितुमर्हति**'' – हे माँ, तुम निराकार होते हुये भी साकार रूप ग्रहण करती हो। क्यों? '**उपासकानां कार्यार्थं श्रेयसे जगतामपि**' – जो भक्त हैं, मुमुक्षु हैं, उनको उन्मुक्त करने के लिये, जगत-कल्याण के लिये मातृरूपिणी महाशक्ति प्रकट होती हैं। श्रीमाँ सारदा वही महाशक्ति हैं, जो 'मायया बहुरूपिणी' हैं, वे माया द्वारा बहु रूपों में स्वरूप को आवृत कर रखी हैं। श्रीरामकृष्ण देव इस सम्बन्ध में एक उपमा देते थे – 'वह राख से ढँकी हुई बिल्ली जैसी है।'' बिल्ली यदि राख से शरीर को आवृत कर ले, तो उसे पहचानना कठिन हो जाता है। उसी प्रकार श्रीमाँ भी अपने स्वरूप को सदा आवृत किए रहती थीं, इसलिए माँ क्या हैं, कोई समझ नहीं पाता था। फिर भी कई बार भक्तों के जीवन में ऐसा अवसर आया, जब उनकी व्याकुलता-आतुरता देखकर श्रीमाँ सारदा ने अपना आवरण हटाकर उसके सम्मुख स्वरूप को प्रकाशित किया। ऐसी ही एक-दो घटनाएँ यहाँ उल्लेखनीय हैं।

स्वामी सत्स्वरूपानन्द जी ने अपने जीवन के एक अनुभव का वर्णन इस प्रकार किया है – एक बार ज्ञान महाराज के साथ वे जयरामबाटी में श्रीमाँ का दर्शन के लिए गये। गाँव पहुँचने के बाद वे दोनों ढूढ़ँते हुए माँ के घर पहुँचे। उन्हें देखकर श्रीमाँ अत्यन्त प्रसन्न हुईं तथा उनका सप्रेम स्वागत किया। श्रीमाँ से वार्तालाप के दौरान उनलोगों ने श्रीमाँ से दीक्षा के लिए प्रार्थना की। श्रीमाँ सहमत हुईं। दूसरे दिन सुबह स्नानोपरान्त दीक्षा के लिए समय निर्धारित हुआ। दोनों भक्त व्याकुल-कम्पित हृदय से प्रतीक्षा करने लगे। दूसरे दिन प्रात: स्नानादि के पश्चात् श्रीमाँ ने सत्स्वरूपानन्द जी को बुलाकर अपने पास आसन पर बैठने को कहा। थोड़ा ध्यान के पश्चात् श्रीमाँ ने उन्हें महामन्त्र प्रदान किया। फिर माँ ने वह मंत्र तीन बार जपने के लिए उनसे कहा। मन्त्र-जप करते ही भक्त की आँखों से जैसे एक पर्दा का आवरण हट गया। मोक्षद्वार-उन्मोचनकारिणी श्रीमाँ की ओर देखते ही भक्त को अपने इष्टमन्त्र की अधिष्ठात्री देवी दिखाई पड़ीं। उनके अवाक् विस्फारित दृष्टि को देखकर श्रीमाँ ने कहा – ''बेटा, तुमने ठीक ही देखा है।'' सर्वांग पुलकित, विस्मय-आनन्द से वे स्तब्ध रह गए। उन्हें अनुभव हुआ कि उनका मनुष्य जन्म सार्थक हो गया। कम्पितहृदय से माँ को प्रणाम कर बाहर आकर वे सोचने लगे – यह सब क्या हुआ? अनन्तरूपिणी माँ वराभया मूर्ति में मेरे सम्मुख प्रकट हुईं, यह तो कल्पनातीत है।

उसी दिन दोपहर को श्रीमाँ के कमरे के बाहर बरामदे में प्रसाद लेने हेतु सभी भक्त लोग बैठे हुये थे। सत्स्वरूपानन्द जी नवागत होने के कारण थोड़ा संकोची स्वभाव के थे। भोजन परोसते समय उन्होंने देखा कि श्रीमाँ अपने कमरे के दरवाजे के पास खड़ी हैं और बड़ी ही स्नेहपूर्ण दृष्टि से सभी भक्तों का भोजन करना देख रही हैं। एकाएक सत्स्वरूपानन्द जी ने दीक्षा लेते समय जैसी वराभया मूर्ति के रूप में श्रीमाँ का दर्शन किया था, ठीक उसी वराभया मूर्ति रूप में पुन: माँ का दर्शन किया। तभी किसी ने उनके सम्मुख खीर का एक कटोरा रखते हुए उन्हें कहा – ''माँ ने आपके लिए भेजा है।'' उन्होंने मुँह उठाकर देखा, तो श्रीमाँ पूर्ववत् परिचित मातृरूप में दिखीं। माँ ने अत्यन्त स्नेहपूर्ण मृदु स्वर में कहा, ''बेटा, पूरा खाना खा लो।'' भक्त की अवस्था खाने की तो रही नहीं, परन्तु माँ के अलौकिक स्नेह और करुणा का दर्शन करके उनकी आँखों में अश्रु आ गए। आवेग और कृतज्ञता से उनके कंठ रुद्ध हो गए। यह अविस्मरणीय स्मृति उनके हृदय में जीवनपर्यन्त जाग्रत रही। सत्स्वरूपानन्दजी कहते हैं, ब्रह्मशक्ति जगन्माता के रूप में उस शरीर का अवलम्बन कर लीला कर रही हैं, यह साधु-सन्तों से सुना तो था, विश्वास भी किया था, परन्तु स्वयं की वह अनुभूति एक पृथक् आस्वादन था। ब्रह्मसत्ता का अलौकिक भाव यदा-कदा

ही किसी को सौभाग्य से अनुभव हो पाता है।

श्रीमाँ के गुरु या ब्रह्म रूप का दिव्य दर्शन कई लोगों को स्वप्न में भी हुआ था। राँची-निवासी एक युवक-भक्त (निशिकान्त चक्रवर्ती) दीक्षा लेने के लिये व्याकुल था। तभी एक रात्रि को उसने स्वप्न में देखा कि कालीघाट की चतुर्भुजा काली मूर्ति उन्हें अपनी गोद में लिये कहती है – 'डरने की क्या बात है बेटा, मैं तो हूँ,' यह कहते हुए वही चतुर्भुजा मूर्ति द्विभुजा नारी-मूर्ति में रूपान्तरित हो गयी। उनके अंग पर लाल धारीवाली साड़ी, हाथों में कंगन था। उस मातृमूर्ति ने उस युवक को सबीज एक नाम देते हुए कहा कि इसे जप करते जाओ। नींद खुलने के पश्चात् उस युवक ने इस विषय में किसी से चर्चा नहीं की। किन्तु वह व्याकुल होकर सोचने लगा कि उस मातृरूपिणी का दर्शन कहाँ और कैसे होगा? फिर किसी भक्त से उसने श्रीमाँ के बारे में सुना, तो उसे लगा कि सम्भवत: वही उसके स्वप्न की माँ होंगी। अधीर होकर उसने जयरामबाटी में श्रीमाँ के घर का पता ढूँढ निकाला तथा माँ से मिलने के लिए जयरामबाटी की ओर चल पड़ा।

अनन्त: वह जयरामबाटी श्रीमाँ के घर पहुँच गया। माँ के घर में प्रवेश करते ही युवक ने देखा कि कई महिलायें बरामदे में बैठी हुई हैं और उनमें से एक महिला सब्जियाँ काट रही है। युवक को देखते ही सभी महिलायें अन्दर चली गईं, केवल जो महिला सब्जी काट रही थी, वही बैठी रह गई। युवक उस महिला की ओर ध्यान से देखते ही विस्मित हो गया। स्वप्न में देखी हुई वहीं माँ उसके सम्मुख विद्यमान थीं। वही चेहरा, वही आँखें और वही भाव। युवक की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी, कण्ठस्वर अवरुद्ध हो गया। वह श्रीमाँ के चरणों पर गिर पड़ा। इसके दो दिनों बाद श्रीमाँ ने उसे प्रत्यक्ष रूप में मंत्र-दीक्षा दी। उस युवक के और भी आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि माँ ने उसे वही मन्त्र दिया है, जो मन्त्र उसे अपने स्वप्न में मिला था। अन्य कई भक्तों के जीवन में ऐसा उदाहरण देखने को मिलता है, जब श्रीमाँ ने उन्हें स्वप्न में मन्त्र दिया तथा उनकी प्रार्थना से उन्हें जगद्धात्री, बगला, काली आदि रूपों में दर्शन देकर उनका संशय-नाश कर उन्हें धन्य किया है।

द्वैतभावों का समन्वय – व्यावहारिक जगत् में अति सामान्य-सी ग्रामवासिनी, अल्पशिक्षिता, लज्जाशीला, अवगुण्ठनधारिणी, मृदुभाषिणीगृहकर्म में व्यस्त, भक्तों की स्नेहमयी मातृरूपिणी सारदा देवी कैसी महाशक्ति की आधार थीं, यह अचिन्तनीय है। दुख-कष्ट में सबके लिए व्यथित, सहानुभूति में द्रवितहृदया माँ कभी किसी की व्यथा, पीड़ा, शोक में स्वजनों जैसा ही क्रन्दन करती थीं। दूसरे ही क्षण वे स्व-स्वरूप में विराजते हुए शिष्य को मंत्र प्रदान कर उसे साधना-पथ का निर्देश करती थीं। वे ब्रह्मभाव में विराजते हुए भी जीव-जगत् के कल्याण हेतु मन को लौकिक जगत् के निम्न स्तर पर लेकर आती थीं। नरलीला में विभिन्न भावों का अपूर्व समन्वय माँ के चरित्र में हमें देखने को मिलता है।

श्रीरामकृष्ण देव सारदा देवी को – 'ब्रह्ममयी' कहकर सम्बोधित करते थे। दक्षिणेश्वर में रहते समय जब सारदा देवी श्रीरामकृष्ण देव के लिये भोजन की थाली लेकर उनके कमरे में प्रवेश करती थीं, तो श्रीरामकृष्ण देव 'माँ ब्रह्ममयी' माँ ब्रह्ममयी' कहते हुए अत्यन्त सम्मान के साथ खड़े हो जाते थे। श्रीठाकुर के लिए सारदा देवी साक्षात् चिन्मयी जगन्माता स्वरूपा थीं।

श्रीसारदादेवीस्तोत्रामृतम् में स्तुति करते हुये कहा गया है –

ब्रह्मयुक्त-नित्य-शक्ति-सृष्ट-जीवपालिकां ।
रामकृष्ण-शक्ति-शुद्ध-बुद्धि-मुक्तिदायिकाम्।।

स्वामी विज्ञानानन्द जी के जीवन की एक विशेष घटना का उल्लेख करना यहाँ समुचित होगा। स्वामी विज्ञानानन्द जी जब भक्तों को दीक्षा देते थे, तब एक दिन रात्रि में श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें स्वप्नादेश देते हुए और माँ सारदा के एक चित्र की ओर संकेत करते हुए कहा – 'भक्तों के सम्मुख इनका नाम लिया करना, ये ही मुक्ति देनेवाली हैं।' इस प्रकार श्रीठाकुर ने श्रीमाँ की शक्ति से भक्तों को अवगत कराना चाहा। स्वामी विज्ञानानन्द जी के अनुसार श्रीठाकुर चैतन्यस्वरूप तथा श्रीमाँ चिन्मयरूपिणी सर्वशक्तिमयी हैं।

एक बार की बात है। श्रीमाँ सारदा काशी के लक्ष्मी-निवास में वास कर रहीं थी। उन दिनों स्वामी ब्रह्मानन्दजी भी काशी में ही थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी प्रतिदिन लक्ष्मीनिवास आकर श्रीमाँ को नीचे भूतल से प्रणाम करते थे। श्रीमाँ मकान के ऊपरी तल पर रहती थीं। एक दिन स्वामी ब्रह्मानन्द जी जब प्रणाम करने आए, तो गोलाप माँ ने उनसे कहा – ''राखाल! माँ पूछ रहीं है कि पहले शक्ति-पूजा क्यों की जाती

है? उत्तर में ब्रह्मानन्दजी ने गोलाप माँ से कहा – ''माँ के पास ब्रह्मज्ञान की कुंजी है। यदि माँ कृपा कर कुंजी से द्वार न खोलें, तो फिर कोई उपाय नहीं है।'' – ऐसा कहते हुए ब्रह्मानन्दजी भावावेश में 'शंकरी चरणे मन मग्न होये रओ रे...' यह भजन गाने लगे। भजन गाते हुए वे नृत्य करने लगे एवं भजन समाप्त होने पर 'हो-हो' ऐसा कहते हुए वहाँ से चले गए। स्वामी ब्रह्मानन्द जी की दृष्टि में माँ सारदा आद्याशक्ति महामायी थीं। इसलिये दुर्गापूजा के दिन वे श्रीमाँ के चरण-कमलों में पुष्पांजलि देकर अत्यन्त सन्तुष्ट होते थे।

'**सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये**' अर्थात् वे प्रसन्न होने पर मनुष्य को चरम पुरुषार्थ-लाभ का अभीष्ट वर प्रदान करती हैं। माँ जगत्तारिणी जगत को मुक्तहस्त हो कृपा वितरण करतीं हैं। कभी वे अन्न प्रदान कर जीवों की क्षुधा का निवारण करती हैं, तो कभी तापदग्ध जीव को अभयवाणी द्वारा सान्त्वना देती हैं – 'मैं सबकी माँ हूँ।' 'सदा याद रखना कि तुम्हारी एक माँ हैं।' श्रीमाँ ने कितने आतुर भक्तों को स्वप्न में दर्शन दिया, मन्त्र दीक्षा दी। कितने भक्तों ने उनके अलौकिक आकर्षण से आकृष्ट होकर उनके चरणों का आश्रय लेकर शान्ति प्राप्त किया।

स्वामी तुरीयानन्द जी ने नरेशचन्द्र चक्रवर्ती से कहा था – 'जन्म-जन्मान्तर से जिस महाशक्ति को खोज रहे हो, वही बन्धन-मुक्त करने के लिए 'उद्‌बोधन-भवन' में बैठी हुई हैं।''

सत्य है कि महामाया ने जिस पर कृपा की, वह निश्चित ही मोक्षपद का अधिकारी होगा। परन्तु स्वयं श्रीमाँ का कहना था – ''गुरु-कृपा, ईश्वर-कृपा तभी फलप्रद होगा, जब आत्मकृपा हो अर्थात् साधक की स्वयं की प्रचेष्टा एवं पुरुषार्थ हो।'' 'साधन किए बिना साध्य वस्तु कबहूँ न मिले' – 'क्या चन्दन घिसे बिना सुगन्ध मिलती है? बेटा, गुरुमन्त्र देने पर भी शिष्य को साधन-भजन करने की आवश्यकता है। श्रीमाँ ने अनेक बार सुस्पष्ट रूप से भक्तों से कहा है कि उन्होंने जिन पर कृपा की है, उन सभी लोगों का यह शेष जन्म है। श्रीठाकुर स्वयं आकर उन्हें ले जाएँगे। फिर भी माँ अपने दीक्षित सन्तानों को साधन-भजन करने के लिये सर्वदा प्रेरित किया करतीं थीं। श्रीमाँ कहती हैं – 'जो भी यहाँ आता है, जो हमारी सन्तान हैं, उनकी मुक्ति निश्चित है। मेरे ऊपर समस्त भार देकर निश्चिन्त रहो। सर्वदा याद रखना कि तुम्हारे पीछे कोई ऐसा है, जो समय आने पर तुमलोगों को उस नित्यधाम में ले जाएगा।'

उपसंहार – अन्ततः हम इस निर्ष्कष पर पहुँचते हैं कि नरलीला में श्रीमाँ सारदा विविध रूपों में भक्तों से लीला करती हुई अपार विस्मयोत्पादन करती हैं – कभी जीवों की सन्तापहारिणी के रूप में, कभी ज्ञान-भक्ति-मुक्ति-प्रदायिनी के रूप में, तो कभी स्नेहमयी अन्नदायिनी माता के रूप में। इस दुर्बोध्य व्यक्तित्व की अधिकारिणी माँ के विषय में स्वामी गम्भीरानन्द जी का यह कथन सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है – 'अखण्ड शक्ति को प्रकृत रूप से विश्लेषण करना सम्भव नहीं है। हमारी ससीम बुद्धि असीम को नहीं पकड़ पाती है। धारणा-शक्ति के अभाव में हमलोग श्रीमाँ को जननी, गुरु, देवी इत्यादि रूपों में कल्पना करने का प्रयास करते हैं, परन्तु थोड़ा चिन्तन करने से समझा जा सकता है कि लोकातीत जीवन में गुरु, देवी एवं माता, ये त्रिविध रूप एकांगी रूप में संश्लिष्ट हैं।''

ऐसे द्वैतभावों का समन्वय माँ के जीवन के हर कार्य में प्रतिक्षण प्रतिभासित होता था। जो माँ देवी-भाव में विराजती हुई भक्तों द्वारा भक्ति से निवेदित पुष्पांजलि सप्रेम ग्रहण करतीं, वही माँ दूसरे ही क्षण भक्तों के लिये व्यग्रता से उनके आहार का प्रबन्ध करने में व्यस्त हो जातीं। माँ कितनी अद्भुत शक्तिसम्पन्न थीं, जो हर अवस्था में निर्लिप्त, निर्विकार अपने कर्त्तव्य कर्म में लगी रहती थीं। दिव्यता और सांसारिकता का ऐसा समन्वय कदाचित् ही संसार में दृष्टिगोचर होता है।

श्रीरामकृष्ण की त्यागी सन्तानों के लिए अन्न-चिन्ता में व्याकुल श्रीमाँ की आन्तरिक प्रार्थना साकार हुई। 'रामकृष्ण संघ' के रूप में श्रीठाकुर के आश्रय में आनेवाले गृही भक्त हों अथवा संन्यासी; किसी को अन्न का अभाव न हो, यही माँ की चिन्ता थी। जब तक वे स्थूल शरीर में रहीं, तब तक रामकृष्ण संघ का केन्द्र बनकर उसकी रक्षा करती रहीं एवं आज भी सूक्ष्म शरीर में रहते हुए अपना आशीर्वाद प्रदान कर वे इस संघ की रक्षा कर रही हैं। सभी प्राणियों में ब्रह्मदर्शन कर माँ कहती हैं – 'सभी ठाकुर के हैं' – 'जीवो ब्रह्मैव नापरः'। ब्रह्मानुभव को श्रीमाँ ने मात्र समाधि तक ही सीमित नहीं किया, बल्कि उसे सर्वावस्था में, सर्वकाल में, सर्वप्राणियों में व्यवहृत कर वेदान्त के सिद्धान्त को जीवन में कार्यान्वित करके दिखाया। माँ का जीवन ही वास्तव में वेदान्त के दर्शन का प्रतिबिम्ब रूप है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ : १. शतरूपे सारदा **२.** श्रीश्री मायेर कथा **३.** तैत्तरीय उपनिषद **४.** विवेक-ज्योति अक्तूबर २०२२

रामगीता (५/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)

सर्वत्र सूत्र वही है। लीला का आनन्द तो बिना खण्ड के होगा नहीं, पर उस खण्ड को ही हम अगर परम सत्य मान लें, तो यह ठीक नहीं होगा। ब्रह्माण्ड में जो अलग-अलग देश हैं, उन देशों के अलग-अलग नाम पड़े हैं, प्रान्तों के नाम पड़े हुए हैं। जब कोई नया प्रान्त बनता है, जैसे उत्तर प्रदेश में उत्तराखण्ड बनने वाला है, तो कुछ लोगों ने बहुत बढ़िया बात कही कि उत्तराखण्ड नहीं उत्तरांचल बनेगा। शब्दशः इसका अर्थ होता है कि जब आप घर बनाते हैं, तो उसमें खण्ड होता है, अलग-अलग कमरे होते हैं, लेकिन आप का परिवार तब संगठित रहेगा, जब आप सोचें कि अलग-अलग कमरों में भी हम एक हैं। आप खण्ड में बँटने लगेंगे, तो परिवार में झगड़ा होने लगेगा।

यह सूत्र रामायण में बार-बार अखण्ड और खण्ड, निर्गुण और सगुण के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया है। परशुरामजी और लक्ष्मण के संवाद में भी यही सूत्र है। इसे परशुराम जी महाराज और श्रीराम की लीला कह लीजिए। पर उसके माध्यम से मानो यह बताया गया कि यदि कहीं भी आपमें मैं की स्वीकृति हुई, कहीं भी ममता की स्वीकृति हुई, तो कितना भी बड़ा व्यक्ति क्यों न हो, उसकी ममता चाहे कितनी छोटी से छोटी वस्तु में क्यों न हो, कहीं न कहीं उद्वेग अवश्य आयेगा।

परशुरामजी महाराज कब आते हैं? जब उन्हें समाचार मिला कि शंकरजी का धनुष मिथिलापुरी में एक राजकुमार ने तोड़ दिया है। लक्ष्मणजी ने इसी बात पर उलाहना दिया था कि महाराज, यदि आपको धनुष इतना प्रिय था, तो जब जनकजी ने प्रतिज्ञा की, तो उसी समय चले आते। महाराज श्रीजनक को फटकार देते कि ऐसी प्रतिज्ञा बिल्कुल मत करो। जब राजा लोग तोड़ने का प्रयत्न कर रहे थे, तब भी आप आकर रोकते। किन्तु जब धनुष टूट गया, तब आपको क्रोध आ रहा है। बड़ा गम्भीर प्रश्न है। घटना घटित हो गई, तब आपको क्रोध आ रहा है। तब बड़े तेजोमय शब्दों में बोलने लगे और भगवान राम अत्यन्त विनम्रता से बोल रहे हैं।

राजा लोग कह रहे थे हम लड़कर सीता को छीन लेंगे। उसी समय आ गये परशुराम जी महाराज! तो राजाओं की अवस्था मरणासन्न हो गई। वे लोग कहाँ तो सीता को पाने की बात सोच रहे थे और अब जब परशुरामजी आ गये, तो प्राणों पर बन आई। अब तो बस फरसा चलनेवाला है। सब एकत्र हैं एक साथ। उसका चित्र प्रस्तुत करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं –

तेहिं अवसर सुनि सिवधनु भंगा ।
आयउ भृगुकुल कमल पतंगा ।। १/२६८/२

भृगुकुल-कमल के जो पतंग हैं, वे परशुरामजी आए। श्रीराम भी रघुकुल के सूर्य हैं। उनके लिये भी कहा गया –

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। ७/३/१

व्यक्ति का किसी न किसी जाति में जन्म होगा, किसी कुल में जन्म होगा। जाति और कुल में जन्म होना एक व्यावहारिक वस्तु है, वह तात्त्विक नहीं हो सकता। यदि आप पुनर्जन्म का सिद्धान्त स्वीकार करते हैं, तो जिस जाति में इस समय आपका जन्म हुआ है, क्या आवश्यक है कि पूर्व जन्म में भी आप इसी जाति में रहे हों? क्या यह निश्चित है कि अगले जन्म में आप फिर इसी जाति में जन्म लेंगे? जाति के आधार पर अगर आप लड़ रहे हैं, तो अपने लिए ही समस्या उत्पन्न कर रहे हैं। इसका अभिप्राय है कि जाति और कुल के आधार पर हम अपने जातिगत कर्तव्य का पालन करें, तो उसको जानना और मानना व्यावहारिक है।

जब रावण के पास संदेश भेजा जाता है कि अरे भई, तुम विचार करके देखो कि तुम्हारा जन्म किस कुल में हुआ है?

उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती।

सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ।। ६/१९/३

पुलत्स्य ऋषि के वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम उनके पौत्र हो। तुमने कितनी पूजा की, कितने पाठ किए, कितने यज्ञ किये ! इतने अच्छे महानतम कार्य तुमने किए, लेकिन अब तुमने क्या किया? तो मानो इसका अभिप्राय यह है कि व्यवहार में उसका प्रयोग होता है, पर होना उसी सीमा में होना चाहिए। कल कथा समाप्त हुई, तो हमारे एक श्रोता ने एक दूसरे व्यक्ति को दिखाकर कहा कि ये व्यासजी के शिष्य हैं। मैंने कहा, किन व्यासजी की बात कह रहे हैं आप? रविशंकरजी भी खड़े थे, वे भी व्यासजी हैं। तो वे नाम लेकर कह सकते थे कि उमांशकर व्यास। लेकिन उन्होंने उमाशंकर व्यास न कहकर कहा, अपने व्यासजी के शिष्य हैं। तो मैंने कहा कि आप दूसरे, पराए व्यास जी हैं क्या? अब यह व्यास शब्द उमाशंकरजी के साथ जोड़ दिया गया है, तो अब उसमें अपना और पराया जोड़ना भी जरूरी है क्या? मानो हमारा अभ्यास इतना जटिल हो गया है कि कथा के ठीक बाद हम जो भाषा बोल रहे हैं, यह बताने की चेष्टा की जा रही है कि अपने व्यास जी के शिष्य हैं, इसलिए ये अपने व्यक्ति हैं। यह एक अन्य दृष्टि अपने-पराए की है। अन्य किसी के शिष्य पराए हैं क्या? इसका अभिप्राय है कि मनुष्य की भेद-बुद्धि बड़ी प्रबल है। वह भेद-बुद्धि केवल भाषा तक रहे, वह भी बड़ी सावधानी से, तो चलो एक व्यावहारिकता है, पर जीवन में वह यथार्थ लगने लगे, यही खण्ड की समस्या है। व्यवहार बिना खण्ड के नहीं चलेगा। जन्म लेंगे, तो किसी जाति में लेंगे, किसी ग्राम में लेंगे, किसी नगर में लेंगे, किसी देश में लेंगे। उसके आधार पर आप अपने देश की भक्ति करें, अपने नगर की सेवा करें, अपने समाज, अपनी जाति की सेवा करें, बहुत अच्छी बात है। पर उसी में आप इतना टुकड़ा मान लें, तो इससे आपका खण्ड छोटा होते-होते इतना छोटा हो जाये कि अन्त में आप एक अकेले रह जायें, तब क्या होगा? पहले देश बना। विश्व में देश हो गये। फिर देश में प्रान्त हो गये। प्रान्त में भी नगर हो गए। नगर में आपका परिवार आ गया। परिवार में भी फिर बेटा आ गया, भतीजा आ गया। छोटे टुकड़े होते-होते ऐसा हो गया।

प्रेमचन्दजी कभी संस्मरण सुनाते हैं। दर्जी को एक कपड़ा सिलने के लिये दिया गया। जिसके लिये बन रहा था, उसने कहा दो इंच छोटा कर देना। उस दुकान में तीन-चार दर्जी थे। प्रत्येक ने सुना था पहले दर्जी ने सोचा, चलो अभी ही कर दूँ। उसने दो इंच छोटा कर दिया। लोग अपने काम में लगे थे, देखा नहीं, पर सोचा आज काम अधिक है, कल कर दूँगा। दूसरे दिन उसने भी दो इंच कम कर दिया। अब तीसरे को याद आई, तो उसने भी दो इंच छोटा कर दिया। तो वह वस्त्र क्या रह गया? वह तो किसी बच्चे के लायक भी नहीं रह गया।

हम लोगों ने इतने खण्ड कर लिये, खण्ड-खण्ड कर बाँट लिया और उस खण्ड को परम सत्य मान लिया। लगता है कि बिल्कुल यही सत्य है, इसके अतिरिक्त और कोई सत्य है ही नहीं। मानो हम उस तत्त्वत: सत्य को भूल ही गये हैं। इस संवाद में यह संकेत किया गया, यह बताया गया कि परशुरामजी महाराज से अधिक महान कौन होगा। लेकिन उन्होंने नाटक में ही सही एक क्षत्रिय के अपराध में सारी क्षत्रिय जाति को दण्ड दिया। अपराधी को दण्ड देना तो उचित ही है, लेकिन फिर अन्य जाति में कोई अपराधी हो तो? यह तो आज का बड़ा स्पष्ट दर्शन है, अपनी जाति का बुरा करे, तो कोई बात नहीं है। अपने परिवार का है, बुरा करे, तो कोई बात नहीं है। दूसरी जाति का, दूसरे परिवार का, दूसरा यह जब दर्शन हमारा होगा, तो यहाँ पर समस्या आ गई।

परशुराम महाराज के लिए शब्द बहुत बढ़िया चुना गया। वे ज्यों ही आये, सारे राजा अपने पिता का नाम ले-लेकर प्रणाम करने लगे। मैं जब यह प्रसंग रामायण में पढ़ता हूँ, और भी कई प्रसंग में आता है कि पहले लोग पिता का नाम लेकर प्रणाम करते थे। लगता है कि आज भी यह प्रथा बनी रहे, तो बहुत अच्छा हो। उससे मैं एक संकट से मुक्त हो सकता हूँ। मैं पूरे देश में भ्रमण करते रहता हूँ और कभी एक नगर का कोई श्रोता दूसरे नगर में मिल गया और वह मुझसे पूछता है कि आपने मुझे पहचाना? इस विषय में मेरी स्मरण शक्ति बहुत कम है। कह दूँ कि नहीं, तो उनको लगता है कि वाह, मुझे भूल गये? उन्हें लगता है कि वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि मैं सब कुछ भूल जाऊँ, भगवान को भी भूल जाऊँ, पर उन्हें याद रखूँ। अब मैं क्या कहूँ? हाँ कहूँ तो भी संकट, ना कहूँ तो भी संकट। तो मैं बीच का मार्ग अपनाकर कहता हूँ – हाँ पहचानता तो हूँ। चलिए इतने में ही सन्तुष्ट हो जायें, तो बच गये। पर नहीं, वे कहते हैं,

अगर आप पहचान गये हैं, तो मेरा नाम बताइए। तब मेरी कलइ खुल जाती है। अब मैंने तो इतना कह दिया कि चेहरा कुछ देखा हुआ, जाना-पहचाना-सा लगता है। मैं कह देता हूँ, कहीं देखा हूँ। अब नाम भी बताओ। पहले जब कोई आते थे, तो अपना परिचय देकर प्रणाम करते थे। आप मिले कहीं और कहें कि मैं रायपुर से आया हूँ, मेरा यह नाम है, तो मुझे आपसे मिलकर बड़ा आनन्द आएगा। यह कितनी सुन्दर परम्परा थी। जितने राजा थे, वे डर के मारे सही, उनके पिताओं को परशुरामजी ने कभी दया करके छोड़ दिया था। इसलिए पिता का नाम लेकर कह रहे हैं – महाराज, मैं उनका बेटा हूँ, मुझ पर भी कृपा ही करिएगा।

पितु समेत कहि कहि निज नामा ।
लगे करन सब दंड प्रनामा ।। १/२६८/२

सभी राजा साष्टांग प्रणाम करने लगे। परशुरामजी का तेज जो है। अन्धकार तो दुखदायी होता ही है, पर प्रकाश भी दुखदायी होता है। जेठ की दोपहरी में सूर्य से क्या आप आँख मिला सकते हैं? परशुरामजी महाराज का वह दिव्य तेज था, अब कौन उनसे आँख मिलावे। अगर वे स्वयं किसी की ओर देख देते थे, तो क्या लगता था।

जेहि सुभायँ चितवहिं हितु जानी ।
सो जानइ जनु आइ खुटानी ।। १/२६८/३

लगता है कि बस, अब तो गया मैं। अब ये मुझे जरूर मारेंगे। उसी सन्दर्भ में विश्वामित्रजी कथा में आ गये। जो लोग नित्य कथा में आते रहते हैं, उन्हें लाभ होता है। कथा की संगति मस्तिष्क में रहती है।

भगवान राम की इस यात्रा में तीन सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति आते हैं। विश्वामित्र जी ब्रह्मर्षि के रूप में महानतम वन्दनीय ऋषि हैं। वे गायत्री मन्त्र के मन्त्र-द्रष्टा हैं और स्वर्ग के निर्माण की शक्ति रखते हैं। विलक्षण राजर्षि जनक हैं, जिनसे योग और ज्ञान की शिक्षा लेने के लिए अनेकानेक मुनि आते थे –

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा ।
बचन किरन मुनि कमल बिकासा ।। २/२८६/१

जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में कमल विकसित होता था, उसी प्रकार से जिस समय जनक तत्त्वज्ञान का उपदेश देते थे, तो मुनि-कमल भी विकसित हो जाते थे। इतने महानतम, श्रेष्ठतम ज्ञानी थे जनकजी। परशुरामजी महाराज तो स्वयं भगवान के अंशावतार के रूप में हैं ही। इस यात्रा में प्रभु से इनका जो मिलन होता है, उस मिलन को न तो जाति के सन्दर्भ में देखने की बात है और न ही स्थूल अर्थों में। उसके अन्तरंग तत्त्वों की ओर पहले भी संकेत किया गया था। वह संकेत यह है कि विश्वामित्रजी महाराज इतने बड़े महापुरुष हैं, पर ताड़का, मारीच और सुबाहु को नहीं मार पाते। अब गोस्वामीजी आध्यात्मिक अर्थों में कहते हैं, मारीच दोष है, सुबाहु दुख है और ताड़का दुराशा है। मानो सब कुछ नष्ट होने पर भी दुराशा बची हुई है। दोष का कोई न कोई रूप विद्यमान है। यदि दोष है, तो दुख भी बना ही रहेगा। तब उन महान मन्त्रद्रष्टा ऋषि को लगा कि सब कुछ होते हुए भी भगवान की भक्ति के बिना, ईश्वर के प्रति अनुराग के बिना, भगवान की कृपा के बिना इनका विनाश नहीं होगा। तब स्वयं उन्होंने अपने आपको इतना ऊपर उठा लिया कि वहाँ सारे विरोध मिट गये। उनके जीवन में एक विरोध था। उनके जीवन में जो कुछ धारणाएँ बन गई थीं। उन्होंने इतनी कठिन तपस्या क्यों की थी? उनका जन्म हुआ क्षत्रिय कुल में और वशिष्ठजी का जन्म हुआ ब्राह्मण कुल में। वशिष्ठजी के सामने वे हार गये। हर तरह से हार गये, अस्त्र-शस्त्र से भी हार गये। तब उन्होंने यह अर्थ लगाया कि ब्राह्मणत्व ही सर्वश्रेष्ठ है, क्षत्रिय वर्ण निकृष्ट है –

धिक् बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्म तेजो बलं बलम्।

इस निष्कर्ष के बाद उन्होंने निर्णय किया कि मैं ब्राह्मण बनकर, ब्रह्मर्षि बनकर दिखा दूँगा। उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की, साधना की। सचमुच परम्परा से हटकर ब्रह्मा ने उन्हें ब्रह्मर्षि स्वीकार कर लिया। लेकिन यह जो धारणा बनी कि ब्राह्मण श्रेष्ठ है और क्षत्रिय निन्दनीय है, यह तो अधूरी धारणा थी। इसका अभिप्राय है कि दोनों प्रकार के दृष्टान्त आते हैं। जमदग्नि ब्राह्मण थे, सहस्रार्जुन क्षत्रिय था। सहस्रार्जुन के पुत्रों ने जमदग्नि का सिर काट लिया। वहाँ पर दिखाई देता है कि क्षत्रिय ने ब्राह्मण को परास्त कर दिया, उसका वध कर दिया। अब इसको सुनकर कोई व्यक्ति जाति को बड़ा मानकर उसी जाति का बन जाऊँ, ऐसा सोचे, तो यही जीवन का लक्ष्य होना चाहिए क्या? इसका अर्थ है कि व्यवहार में तो ऐसा होता है, ऐसा अनुभव करते हैं कि जाति के नाम से लोग बड़ा मान लेते हैं। किन्तु विश्वामित्रजी ने तो इतनी तपस्या कर उस ब्रह्मर्षि-पद को पा लिया। लेकिन उन्हें जब ध्यान आया कि विकारों का या दुर्गुणों का विनाश बिना ईश्वर के नहीं होगा, तब वे ध्यान में बैठ गए। **(क्रमशः)**

बच्चों पर अहैतुकी कृपा बरसानेवाली माँ

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

श्रीमाँ सारदा देवी जयन्ती विशेष

बच्चो, माँ सबसे प्यारी होती है। माँ भी बच्चों से बहुत प्यार करती है। माँ सृष्टि की जननी है। माँ अर्थात् घनीभूत प्रेम, सच्चा आदर्श। माँ ऐसा शब्द है, जिससे ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति होती है। माँ प्रेम, स्नेह, वात्सल्य की मूर्ति होती है। माँ एक परमेश्वरी सत्ता है, जो हर जीव को जन्म देती है और उसे संसार में आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करती है। वह एक अमूल्य रत्न है, जो हमेशा हमारे साथ होती है। वह हमारे लिए प्रेम और समर्पण का प्रतीक है। ऐसी ही हैं हमारी जगत-जननी माँ सारदा। गरीब परिवार में माँ सारदा का जन्म हुआ था। किन्तु बाल्यकाल से ही वे दया की प्रतिमूर्ति थीं। उनकी माँ श्यामासुन्दरी देवी गोदी की बच्ची सारदा को खेत में लिटाकर कपास चुनती थीं। कुछ बड़ी होने पर सारदा इस काम में माँ का हाथ बँटाती और छोटे भाई-बहनों की देखभाल भी करती थी। माँ का पूरा जीवन बहुत संघर्षमय था। फिर भी वे हँसते हुये सबकी सेवा करती रहती थीं। इसलिये बच्चो, हमें श्रीमाँ सारदा के जीवन से माता-पिता के कार्यों में सहायता करने की प्रेरणा मिलती है।

जब माँ सारदा बड़ी होकर संघगुरु बनती हैं, उस समय भी बच्चों के प्रति उनकी विशेष वात्यसल्यमयी कृपा दृष्टिगोचर होती है। इस सम्बन्ध में दो संस्मरण देखने योग्य हैं – एक दिन एक १२ वर्ष का लड़का उद्‌बोधन भवन आया और दीक्षा लेने के लिये माँ के पास रोने लगा। सबको लगा कि यह बचपना है और अनुरोध को कोई महत्त्व नहीं दिया। किन्तु माँ ने राधू के द्वारा लड़के को अपने पास बुलाया। फिर माँ ने उसे दीक्षा दी। सेवक ने माँ से कहा – 'माँ बड़े आश्चर्य की बात है, आपने इतने छोटे लड़के को दीक्षा दे दी, वह क्या समझेगा?'' माँ ने उत्तर दिया – ''ठीक है बेटा, वह एक निश्छल लड़का है। कल उसने मेरे पैर पकड़ लिये और दीक्षा के लिए रोने लगा। मुझे बताओ, भला कितने लोग ईश्वर के लिए रोते हैं? कितने लोगों में इस प्रकार का दृढ़ आध्यात्मिक आकर्षण है?''

ऐसा ही एक अन्य संस्मरण है। १९१२ में माँ तीर्थ-यात्रा से कलकत्ता लौटीं। कोआलपाड़ा आश्रम के एक युवा-भक्त वरदा ने दीक्षा के लिए अनुरोध किया। उस समय वरदा की आयु १३ वर्ष थी। इसे सुनकर गोलाप-माँ तेज स्वर में बोलीं – 'यह छोटा लड़का कुछ दिनों में मन्त्र भूल जाएगा और अभी दीक्षा लेना चाहता है। केदार (स्वामी केशवानन्द) ने इस लड़के को दीक्षा के लिए भेजा है, इसमें कोई समझ नहीं है। उन्होंने वरदा से कहा, 'देखो, माँ तुम्हारे गाँव के पास की हैं, जब माँ वहाँ जाएँगी, तब ठीक से सोच-विचार कर दीक्षा ले लेना।'

जब गोलाप-माँ चली गईं, माँ सारदा बोलीं – ''देखो, गोलाप कैसे बात करती है। क्या वह भूल गई कि व्यक्ति बचपन में ठीक से सीखता है। उसे अभी प्रारम्भ करने दो और जितना वह कर सकता है, करे। बाद में मैं उसका और अधिक मार्गदर्शन करूँगी।'' जन्माष्टमी के दिन श्रीमाँ ने वरदा को दीक्षा दी। माँ ने फिर वरदा के सिर और छाती का स्पर्श करते हुए आशीर्वाद दिया और ठाकुर से प्रार्थना की, 'कृपा करके इस जीवन और अगले जीवन में इसकी रक्षा करो।' माँ सारदा अपने आसन से उठीं और मिठाई प्रसाद दीं।'' जब वरदा उनके सामने खाने में संकोच कर रहा था, तो उन्होंने कहा, 'बेटा, शर्म मत करो। व्यक्ति को दीक्षा के बाद प्रसाद ग्रहण करना चाहिए।' श्रीमाँ कहती थीं, ''मैं धर्ममाता नहीं, केवल गुरुपत्नी नहीं, मैं सच्ची माँ हूँ, सबकी माँ हूँ। यह वाक्य उनके महत्त्व और उनका सबके प्रति समान प्रेम-भाव को दर्शाता है। माँ सारदा ने अपने जीवन में सबके प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखा। उन्हें प्रेम से सभी 'माँ' कहते थे। वे सबका दुख अपना समझती थीं। चारों ओर से हताश-निराश व्यक्ति श्रीमाँ के पास आकर शान्ति प्राप्त करता था। वे सबके प्रति अत्यन्त दयालु थीं। उन्होंने अपने जीवन में आध्यात्मिक गुरु और माँ के रूप में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

रामकृष्ण मिशन में वे श्रीमाँ (होली मदर) के रूप में प्रसिद्ध हैं। उनके उपदेशों में प्रेम, करुणा, सेवा और सत्यनिष्ठा पर जोर दिया गया है। तो बच्चो, माँ, माँ ही थीं, माँ ही हैं और माँ ही रहेंगी। माँ हम-सबकी माँ हैं, मेरी भी माँ, तुम्हारी भी माँ, लोक-परलोक सुधारनेवाली, सदा प्रेम बरसानेवाली हम सबकी माँ – श्रीमाँ सारदा। ○○○

श्रीमाँ सारदा देवी जयन्ती विशेष

आधुनिक नारी और प्राचीन आस्था का संघर्ष

डॉ. जया सिंह, रायपुर

नारी शब्द सुनते ही हमारे मन में एक ऐसी छवि बनती है, जो समर्पण, संरक्षण, ममता और सौम्यता से भरी होती है। प्राचीन भारतीय समाज में नारी को लेकर कई प्रकार की मान्यताएँ थीं। वे मुख्यत: घर की लक्ष्मी, मातृशक्ति और धर्म की रक्षिका मानी जाती थीं, लेकिन उनके लिए समाज में स्वतन्त्रता की परिधि सीमित थी। वे मुख्य रूप से पुरुषों के संरक्षण में रहती थीं और उनका कर्तव्य घर के भीतर की देखरेख, संतान-पालन और परिवार की आन्तरिक शान्ति बनाए रखना था।

प्राचीन धर्मग्रन्थों में कहीं न कहीं नारी को सम्मान दिया गया है, लेकिन यह सम्मान केवल पुरुषों के सेवा-निवेदन तक सीमित था। उदाहरणस्वरूप, वेदों में नारियों को 'साध्वी' और 'पतिव्रता' के रूप में सम्मानित किया गया है, लेकिन उन्हें राजनीति और समाज के अन्य क्षेत्रों में समान अवसर नहीं दिए गए थे। प्राचीन आस्थाओं और आधुनिक नारी की स्वतन्त्रता के बीच मुख्य संघर्ष नारी के स्वावलम्बन और समाज की पुरानी मान्यताओं के बीच है। वेदों में नारी का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वेद भारतीय संस्कृति और दर्शन के सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, जो जीवन के प्रत्येक पक्ष को विस्तृत रूप से समझाते हैं। वेदों में नारी को सम्मान, पूजा और सशक्तता की दृष्टि से देखा गया है। वेदों के विभिन्न अंशों में नारी को जीवनदायिनी, प्रकृति और देवी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वेदों का अध्ययन न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह समाज, संस्कृति और नारी की भूमिका को भी स्पष्ट करता है। वेदों में नारी को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और उनका चित्रण सम्मानजनक और सकारात्मक रूप से किया गया है। यद्यपि वेदों के बाद के धार्मिक ग्रन्थों और शास्त्रों में नारी के सम्बन्ध में कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, तथापि वेदों में नारी को एक उच्च स्थान पर रखा गया है।

ऋग्वेद में नारी का स्थान : ऋग्वेद में नारी को 'आदिशक्ति' के रूप में पूजा जाता है। इसे न केवल घर की, बल्कि समाज और ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और संरचना के रूप में भी देखा जाता है। 'सोमिनि' (सौम्या) और 'अम्बा' जैसी नारी देवियाँ हैं, जो बल, वीरता और सौंदर्य की प्रतीक मानी जाती हैं। ऋग्वेद में कुछ रचनाएँ, जैसे कि 'कन्या स्तुति' या 'उषा-स्तोत्र' नारी की शक्ति और महिमा को दर्शाते हैं।

यजुर्वेद में नारी का स्थान : यजुर्वेद में भी नारी को सम्मानित स्थान मिला है। इसके श्लोकों में पति-पत्नी के सम्बन्ध को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। 'पविव्रता' की महिमा का वर्णन करते हुए, यह कहा गया है कि नारी अपने परिवार की धुरी होती है और घर की सुख-शान्ति में उसका योगदान अभूतपूर्व है।

सामवेद में नारी का स्थान : सामवेद में संगीत और काव्य का बहुत महत्त्व है, जिसमें नारी का स्थान विशेष है। यहाँ नारी को कला, संगीत और सौन्दर्य की देवी के रूप में चित्रित किया गया है।

आध्यात्मिक दृष्टि : वेदों में नारी को 'प्रकृति' के रूप में देखा गया है, जो सृजनशीलता और पालन-पोषण की प्रतीक है। वेदों में नारी का स्थान समर्पण, श्रद्धा और निष्ठा

का भी है। हिन्दू धर्म में देव-पूजन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। देवी माहात्म्य, दुर्गा सप्तशती और अन्य पुराणों में शक्ति, लक्ष्मी, सरस्वती, काली और दुर्गा जैसी देवी-रूपों की पूजा की जाती है, जो नारी की शक्ति, सम्प्रभुता और संरक्षण को दर्शाते हैं।

देवी भगवती के विभिन्न रूपों को नारी शक्ति के रूप में देखा गया है, जो हर रूप में सृजन, पालन और संहार की शक्ति रखती हैं। लक्ष्मी (धन और समृद्धि की देवी), सरस्वती (ज्ञान और कला की देवी) और काली (सृजन और संहार की देवी) का पूजन नारी शक्ति के विभिन्न पहलुओं को स्वीकार करता है। ये देवियाँ नारी के भीतर छिपी शक्तियों का प्रतीक हैं।

नर और नारी के सहयोग से सृष्टि के आरम्भ काल में परिवार बने और समाज की रचना की व्यवस्था करनेवालों ने यह पूरा ध्यान रखा कि ये दोनों ही सहयोगी परस्पर अधिक से अधिक सहायक हों, एक दूसरे को पराधीन बनाने का अनैतिक प्रयत्न न करें। उसी दृष्टिकोण के अनुसार जन-समाज की रचना हुई। नर और नारी लाखों-करोड़ों वर्षों तक एक-दूसरे के सहायक, मित्र और स्वेच्छा से सहयोगी बनकर जीवन व्यतीत करते रहे, इससे स्वस्थ समाज का विकास हुआ, उन्नति, प्रगति, प्रसन्नता और सुख-शान्ति के उपहार भी इस व्यवस्था ने दिए।

विश्व के, विशेषत: भारत के प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट प्रकट है कि नारी ने नर के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य किया है और जीवन की अनेक समस्याओं को सरल करने में, ज्ञान और विज्ञान की महत्त्वपूर्ण प्रगति में भारी योगदान दिया है। एक ने दूसरे को अपनी अपेक्षा अधिक सम्माननीय समझा और घनिष्ठता के आत्मीय बन्धनों को दिन-दिन सबल बनाते हुए हर लौकिक दृष्टि से एक-दूसरे पर कोई पराधीनता लादने का प्रयत्न नहीं किया। स्वस्थ विकास और सच्चे प्रेम-भाव का उपाय भी इसके अतिरिक्त और कोई न था।

भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर नर और नारी, निश्छल शिशुओं की तरह किलकारियाँ मारते हुए परस्पर खेलते-कूदते दीखते हैं। विश्व का अधिकांश विकास इन्हीं मंगलमयी भावनाओं के साथ हुआ है।

देवगण, ऋषि और राजाओं से लेकर साधारण गृहस्थ और दीन-हीनों के जीवन में नर और नारी की एकता और समता ऐसी गुँथी पड़ी है कि यह निर्णय करना कठिन पड़ता है कि दोनों पक्षों में से किसे प्रथम माना जाए। देव वर्ग में लक्ष्मी, दुर्गा, सरस्वती आदि का जो स्थान है, उसे किसी पुरुष देवता से किसी भी प्रकार कम नहीं किया जा सकता। देवताओं के साथ भी नारी असाधारण रूप से गुँथी हुई है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि किसी भी देवता को लें, उनकी धर्मपत्नियाँ, उनके समकक्ष ही कार्य और उत्तरदायित्व सँभालती दीखती हैं।

सीता और राधा को राम और कृष्ण के जीवन से अलग नहीं किया जा सकता। अनसूया, अरुन्धती, गार्गी, मैत्रेयी, शतरूपा, अहिल्या, मदालसा आदि ऋषिकाओं का महत्त्व भी उनके पतियों जैसा ही है। गान्धारी, सावित्री, शैव्या आदि असंख्य महिलाएँ योग्यता और महानता की दृष्टि से अपने पतियों से किसी भी प्रकार कम नहीं थीं। वैदिक काल में ऋषियों की भाँति अनेक ऋषिकाओं में उनका समुचित स्थान रहा है। यज्ञ में तो नारी की अनिवार्य आवश्यकता मानी गई है।

नर और नारी समान रूप से अपना विकास करते हुए आगे बढ़े हैं और संसार को आगे बढ़ाया है। भारतीय संस्कृति का समस्त तत्त्वज्ञान और इतिहास इस बात का साक्षी है कि नर ने कदापि कहीं भी यह प्रयत्न नहीं किया है कि नारी को अपने से पिछड़ी हुई, दुर्बल, अविश्वस्त माने और उसके साधनों का शोषण करके, उसे अपंग बनाकर उसे स्वेच्छानुसार चलने के लिए विवश एवं पराधीन कर दे। यदि ऐसी बात रही होती, तो इतिहास के पृष्ठ दूसरे ढंग से लिखे गए होते। जगद्गुरु कहलाने, विश्व का नेतृत्व करने और विश्व में सर्वत्र आशा और प्रकाश की किरणें फैलाने में जो श्रेय भारत को प्राप्त हुआ था, वह कदापि न हुआ होता।

प्राचीन भारतीय समाज में नारी को विशेष स्थान प्राप्त था। वह गृहस्थ जीवन की धुरी मानी जाती थी और परिवार की देखभाल में उसकी भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी। धर्मग्रन्थों में नारी को 'शक्ति' के रूप में पूजा गया। उदाहरणार्थ हम देवी दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में नारी के विभिन्न रूपों को देखते हैं, जहाँ वह शक्ति, धन और ज्ञान की प्रतीक मानी जाती हैं। इसके अतिरिक्त समाज में नारी की स्वतन्त्रता सीमित थी। ये नारी को एक सीमित क्षेत्र में रखती थीं। उसे समाज के नियमों में अपना जीवन व्यतीत करना होता था। संस्कृतियों और धर्मों के अनुसार उसे पिता, भाई और पति के संरक्षण में रहना पड़ता था। यह व्यवस्था नारी को सम्मान तो देती थी, लेकिन उसकी स्वतन्त्रता और इच्छाओं को दबा देती थी। फिर भी प्राचीन काल में नारी ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपना योगदान दिया। वह केवल गृह-संरक्षिका नहीं थी, उसने युद्धों, साहित्य, कला और विज्ञान में भी योगदान दिया। उदाहरण के लिए, अपाला और गार्गी जैसी विदुषियाँ जिनकी विद्वत्ता का आज भी सम्मान किया जाता है, नारी के मानसिक सामर्थ्य की प्रतीक हैं।

नारी के योगदान को केवल धार्मिक ग्रन्थों या साहित्य में ही नहीं, बल्कि इतिहास में भी देखा जा सकता है। रानी दुर्गावती, रानी लक्ष्मी बाई और कर्णावती जैसी शूर-वीर नारियाँ अपने समय में युद्ध और राज्य प्रशासन में समान रूप से योगदान देती थीं। उनके संघर्ष और नेतृत्व ने सिद्ध किया कि नारी का स्थान केवल घर तक सीमित नहीं था, वह समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रभाव डाल सकती थी।

आस्थाओं में महिलाओं के लिए कुछ कड़े नैतिक मानक थे, जैसे कि उनकी शुद्धता, पतिव्रता धर्म आदि। आधुनिक नारी इन परम्पराओं को चुनौती देती है, क्योंकि वह स्वयं को पूरी तरह से व्यक्त करने का अधिकार मानती है और शारीरिक, मानसिक और सामाजिक स्वतन्त्रता की समर्थक है।

प्राचीन हिन्दू धर्म में महिलाओं की स्थिति का निर्धारण मुख्यत: धार्मिक ग्रन्थों में किया गया था। वेदों में नारी को पूजनीय माना गया है, लेकिन समाज में उसके अधिकार सीमित थे। 'नारी का स्थान घर में है', यह विचार समाज में गहरा पैठ चुका था। विवाह, मातृत्व और घरेलू कामकाजी जीवन को स्त्री के जीवन का मुख्य उद्देश्य माना जाता था और इन आस्थाओं के अन्तर्गत स्त्रियों को बाहरी जगत से दूर रखा गया था।

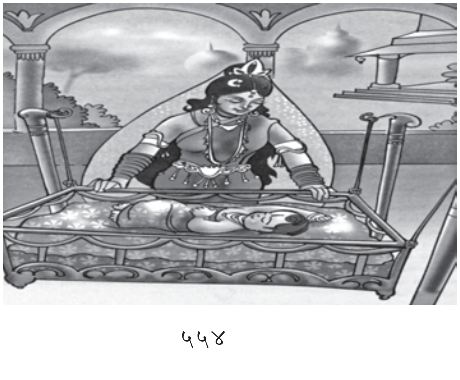

वर्तमान समय में नारी ने अपनी पहचान को पूर्णत: नए ढंग से स्थापित किया है। आज की नारी न केवल अपनी पारम्परिक भूमिका निभाती है, बल्कि वह अपने अधिकारों और स्वतन्त्रता के लिए भी संघर्ष कर रही है। शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति, विज्ञान, कला और खेल के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता तेजी से बढ़ी है।

आधुनिक नारी का सबसे बड़ा योगदान शिक्षा के क्षेत्र में देखा जा सकता है। आज महिलाएँ केवल घर की देखभाल नहीं करतीं, बल्कि वे उच्च शिक्षा प्राप्त करके समाज में अपनी पहचान बना रही हैं। इस दिशा में महिलाओं का मार्गदर्शन करनेवाली प्रेरणादायी व्यक्तित्वों में कल्पना चावला, सुष्मिता सेन और कई अन्य महिलाएँ सम्मिलित हैं, जिन्होंने न केवल समाज के विभिन्न क्षेत्रों में नाम कमाया, बल्कि समाज में महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण को भी बदला है।

आज नारी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक है। वह यह समझती है कि उसके पास केवल अधिकार ही नहीं, बल्कि अपने जीवन के निर्णय लेने की स्वतन्त्रता भी है। आधुनिक नारी अब अपने लक्ष्यों के प्रति समर्पित है। वह न केवल अपने परिवार को समर्पित रहती है, बल्कि अपने व्यक्तिगत और व्यावसायिक जीवन को सन्तुलित करने की कला भी जानती है।

प्राचीन आस्थाओं और आधुनिक नारी के बीच का संघर्ष एक जटिल प्रक्रिया है। प्राचीन समय की आस्थाएँ, जो नारी को सीमित कर देती थीं, अब चुनौती के रूप में सामने आ रही हैं। यह संघर्ष ने केवल व्यक्तिगत स्तर पर है, बल्कि सामूहिक रूप से समाज की संरचना में भी परिवर्तन ला रहा है। आधुनिक नारी के संघर्ष का पहला पहलू उसकी स्वतन्त्रता है। प्राचीन आस्थाएँ जहाँ उसे एक सीमित क्षेत्र में रखने का प्रयास करती थीं, वहीं आज की नारी अपने आत्मनिर्भर होने की आवश्यकता का अनुभव करती

है। आज नारी को अपने जीवन के निर्णय लेने की स्वतन्त्रता है। वह न केवल अपने परिवार की देखभाल करती है, बल्कि अपने केरियर में भी सफलता प्राप्त करने के लिए अपनी दिशा और उद्देश्य निर्धारित करती है।

दूसरी ओर, आधुनिक नारी को अपनी संस्कृति और परम्पराओं से भी जुड़े रहने की इच्छा होती है। वह समझती है कि प्राचीन आस्थाएँ और परम्पराएँ समाज को एक निश्चित दिशा देने का काम करती हैं, लेकिन अब समय आ गया है कि उन परम्पराओं में परिवर्तन किया जाए, जो नारी के अधिकारों और स्वतन्त्रता को कुंठित करती हैं। समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया धीरे-धीरे हो रही है। पहले की अपेक्षा आज महिलाएँ अधिक मुखर हो रही हैं और नि:संकोच अपनी बात रख रही हैं।

अब महिलाओं के अधिकारों की रक्षा के लिये विभिन्न कानून बनाए जा रहे हैं। यह सामाजिक परिवर्तन प्राचीन आस्थाओं से टकराता हुआ समाज को एक नए दृष्टिकोण की ओर ले जा रहा है। नि:सन्देह नारी की स्थिति में परिवर्तन एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया रही है, लेकिन यह समाज के लिए एक सकारात्मक परिवर्तन है। आज की नारी ने यह सिद्ध कर दिया है कि वह न केवल अपने परिवार का, बल्कि समाज का भी उत्थान कर सकती है। वह प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा सकती है, चाहे वह राजनीति हो, विज्ञान हो या कला हो।

निष्कर्षत: आधुनिक नारी और प्राचीन आस्था के बीच का संघर्ष न केवल व्यक्तिगत संघर्ष है, बल्कि यह समाज और संस्कृति के बड़े परिवर्तन का प्रतीक है। नारी ने अपनी स्थिति को समझा है और अब वह अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर रही है। यह संघर्ष समाज के दृष्टिकोण और विचारों में एक परिवर्तन लाता है, जो नारी को एक बराबरी का अधिकार देता है। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप, हम यह कह सकते हैं कि नारी ने आज अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होकर एक नई दिशा की ओर कदम बढ़ाया है।

इस परिवर्तन की प्रक्रिया में कोई भी आस्था या परम्परा जो नारी के विकास में बाधा डालती है, वह धीरे-धीरे समाप्त हो जाएगी। आज की नारी अपने उद्देश्य में पूर्ण रूप से समर्पित है। वह समाज में अपने योगदान से यह सिद्ध कर रही है कि वह किसी भी क्षेत्र में पुरुषों के बराबर खड़ी हो सकती है। समाज की संरचना और उसका विकास समय के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। समय के प्रवाह के साथ समाज में स्त्री की स्थिति और भूमिका में भी अनेक परिवर्तन आए हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक महिलाओं को उनके अधिकारों, स्थिति और स्वतन्त्रता के क्षेत्र में बहुत-सी चुनौतियों का सामना करना पड़ा है। प्राचीन आस्थाओं और परम्पराओं में नारियाँ कई प्रकार के बन्धनों और नियन्त्रण में रहा करती थीं, जबकि आधुनिक नारीवाद ने उसे स्वतन्त्रता, समानता और सशक्तिकरण की दिशा में प्रेरित किया है। ○○○

सम्बल बनूँ

विजय कुमार श्रीवास्तव, उत्तरप्रदेश

चाहता मन व्योम से मैं लिपटकर,
प्रेम के संदेश की सरिता बनूँ ।
दीन-दुखियों के दुखों की अग्नि में ,
हवन होने के लिये समिधा बनूँ ।।

व्यर्थ में संसार के दुख झेलकर,
अहं की परितुष्टि के सपने सँजो ।
क्षणिक सुख के खेल सारे खेलते,
अब समझ पाया कि कैसे क्या बनूँ ।।
पाट दूँ विद्वेष की सब खाइयाँ,
मैं सहारा पा सकूँ थोड़ा अगर ।
प्रेम की हर पंखुड़ी को जोड़कर,
चाहता हूँ गर्व से कर दूँ अमर ।।

धार तृष्णा की न धीमी पड़ रही,
आग मन में ईर्ष्या की जल रही।
हूँ भटकता स्वार्थ के संसार में,
भार मेरा ढो रही कब से मही ।।

अब सजगता प्रभु-कृपा से मिली यदि,
चाहता हूँ राग प्रियतम का धुनूँ।
किसी तरु की सुखद शीतल छाँह बन,
थके-हारे व्यथित का सम्बल बनूँ ।।

भजन एवं कविता

कर कृपा-वर्षण तनय पर

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

सकल सृष्टि सृजन-कारिणी, पालिनी-संहारिणी !
कर कृपावर्षण तनय पर, सारदे भवतारिणी !!
विश्वजननी भुवनमोहिनी, जगद्व्यापिनी अम्बिके,
परमशक्ति परम प्रकृति, पार्वती परमाम्बिके !
पतितपावनी तापहारिणी, लोकत्रय उद्धारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर सारदे भवतारिणी !!
षोडशी भुवनेश्वरी तुम, जगद्धात्री कालिका,
सर्वशक्ति-समन्विता तुम, सर्वजन प्रतिपालिका ।
हे सकल सौभाग्यदायिनी, भक्तजन हितकारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर सारदे भवतारिणी !!
देवगण-वरदायिनी तुम, दुष्ट-दानव-घातिनी,
सर्वसुखदात्री भवानी, असुरजन संघातिनी ।
रिद्धि-सिद्धि भुक्ति-मुक्ति दायिनी शुभकारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर, सारदे भवतारिणी !!
जगज्जननी जानकी तुम, राम-पग-अनुगामिनी,
कृष्ण की तुम राधिका हो, भैरवी भवभामिनी।
रामकृष्णाराधिका तुम, पातिव्रत्य प्रचारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर, सारदे भवतारिणी !!
विषम भवबाधा विमोचिनी, सुयश-सौख्य प्रदायिनी,
जगत-रक्षा-व्रत निरत नित, अम्ब निर्मलकायिणी।
दिव्य दीपित आनना, अति दिव्य भाव प्रसारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर, सारदे भवतारिणी !!
सकल ज्ञानोद्धाषिणी तुम, सर्व शास्त्रोद्घाटिनी,
ब्रह्मशक्ति चिन्मयी, माया समग्रोच्चाटिनी ।
प्रणतजन परिपोषिणी तुम, भक्त-क्लेश निवारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर, सारदे भवतारिणी !!
मूलाधार-निवासिनी माँ, विन्ध्य-पर्वत-वासिनी,
ब्रह्मलीला-सहचरी तुम, ब्रह्म संग विलासिनी।
हे परम आनन्ददायिनी, पराविद्या-धारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर, सारदे भवतारिणी !!
परमहंस-प्रिय पवित्रा, परम ज्योति प्रकाशिनी,
सर्वदुःखसहा शरण्या, सौम्या मृदुभाषिणी।
सर्वदा संतान हित, सर्वस्व अर्पणकारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर, सारदे भवतारिणी !!
ज्ञान दे, शुभ भक्ति दे माँ, निज चरण अनुरक्ति दे,
कर सकूँ जीवन सफल, ऐसी हमें तुम शक्ति दे ।
हृदय में कर वास नित, हे भक्त-चित्त-विहारिणी,
कर कृपावर्षण तनय पर, सारदे भवतारिणी !!

कौन तुम करुणामयी हो

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

कौन तुम करुणामयी हो, आ गयी भवताप हरने।
दीन सुत पर दया करने, सब बिपद् को त्वरित हरने ।।
देख तेरा प्रेम अनुपम, भक्ति उर में लगी बहने।
शरण में जाकर तुम्हारे, मुक्त होता भक्त क्षण में ।।
त्याग तेरा दिव्य है माँ, निरत जन-कल्याण करने।
कभी सीता कभी राधा, रूप लेकर आयी जग में ।।
आ गया हूँ पास तेरे, मेटने दुख-कष्ट अपने।
यही मेरी कामना है, दो शरण तुम पद-कमल में ।।

मेरी सारदा माँ आयी है

श्रीमती अचला देवी, दुर्ग, छत्तीसगढ़

मेरी सारदा माँ आयी है, अन्तर शक्ति जगाने ।
मन मोहिनी माँ आयी है, सोऽहं जाप जपाने ।।
महिमा उनकी कैसे गाऊँ । वाणी रूक-रूक जाये रे ।
सन्मुख उनके आने पर मस्तक झुक-झुक जाये रे ।
प्रभु का मार्ग दिखाने वह पावन ज्योति जलाई है ।।
मेरी सारदा माँ आयी है ।।
वह चरण धरे जिस धरती पर, वह तीरथ हो जाये रे ।
क्षणभर देखे जिसको उसकी चित्शक्ति जग जाये रे ।।
जीवन अमर बनाने वह अमृत-रस भर लाई है ।। मेरी..
रिद्धि-सिद्धि जिसके चरणों में, भक्ति चँवर डुलाये ।
वेष विरागी परमहंस और राजरानी कहलाये ।।
वाणी अमर सुनाने और अलख जगाने आयी है । मेरी..
अमर ज्योति फैलायेगी, श्रीमाँ की शाश्वत वाणी ।
सोया कण-कण जाग उठेगा, जागेगा हर प्राणी ।।
सबको गले लगाने, वह जगदम्बा बन आयी है ।। मेरी..
भव-बन्धन में जकड़ा प्रानी, जग की ठोकर खाया ।
लख चौरासी योनि भुगतते सच्चा सुख नहीं पाया ।
आनन्दमयी माँ सबको मुक्ति दिलाने आयी है ।। मेरी...
कृपापुंज हो माँ हमारी, हम क्या तुझसे माँगे ।
हम तो आये शरण तिहारे अपना शीश चढ़ाने ।
भव-सागर तारने तू नाविक बनकर आयी है ।। मेरी..

आशावान, बलवान और संकल्प में दृढ़ बनो

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

आशिष्ठः बलिष्ठः दृढिष्ठः – यह तैत्तिरीयोपनिषद् की शिक्षावल्ली से लिया गया एक अद्वितीय उद्घोष है, जो आत्मविकास की तीन महान् शक्तियों – आशा (आशिष्ठ:), बल (बलिष्ठ:) और संकल्प (दृढिष्ठ:) – के त्रिवेणी संगम को प्रकट करता है। जिस प्रकार गंगा, यमुना और अदृश्य सरस्वती का त्रिवेणी-संगम जीवन और तीर्थ का पावन प्रतीक है, उसी प्रकार यह त्रिसूत्र मनुष्य के मन, शरीर और आत्मा की समन्वित चेतना का प्रतीक है। यह उद्घोष कहता है – ''आशा से भरपूर बनो, बलवान बनो और संकल्प में दृढ़ बनो।'' यह युवाओं को आन्तरिक स्थिरता और आत्मविश्वास प्रदान करता है। यह केवल दार्शनिक विचार नहीं, बल्कि एक जीवन-रणनीति है, एक जीवन्त और व्यावहारिक जीवन-दिशा है, जो छात्र, युवा उद्यमी, नौकरी-पेशा या कलाकार, सभी के लिए उपयोगी है। यह बताता है कि निराशा में भी आशा का दीप जलाना, परिस्थितियों से हारने के बजाय भीतर की शक्ति जगाना और डटे रहकर लक्ष्य तक पहुँचना ही आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

१. आशिष्ठः – आशावादी बनो

आशिष्ठ: होने का का तात्पर्य है – अपने भीतर वह दीर्घदृष्टि और सम्भावना की चेतना विकसित करना, जो असफलताओं, नकारात्मकता और अनिश्चितताओं के बीच भी रास्ता ढूँढ सके। यह केवल सकारात्मक सोच नहीं, बल्कि रणनीतिक दृष्टिकोण है। आशिष्ठ: आशा के प्रति दृढ़ विश्वास है। जिस मनुष्य के भीतर यह आन्तरिक आशा जीवित रहती है, वह मार्ग में आनेवाली बाधाओं को भी अवसर में बदल देता है। यह आशा ही है, जो एक किसान को सूखे में भी बीज बोने का साहस देती है, एक विद्यार्थी को असफलता के बाद भी पुन: पढ़ने की प्रेरणा देती है। आशिष्ठ: – आशा की वह धारा है, जो जीवन को निरन्तर प्रवाह देती है, जो अन्धकार में भी आलोक की खोज करती है और बार-बार गिरने के बाद भी उठ खड़े होने की प्रेरणा देती है। जीवन में चाहे जितनी भी असफलताएँ आएँ, भीतर आशा की लौ जलती रहनी चाहिए।

२. बलिष्ठः – आत्मबल से परिपूर्ण बनो

बलिष्ठ: जीवन की वह शक्ति है, जो भय, अस्थिरता और आन्तरिक दुर्बलताओं से जूझने की सामर्थ्य प्रदान करती है। यह केवल शारीरिक बल नहीं, अपितु आत्मबल और नैतिक शक्ति की सशक्त अभिव्यक्ति है। आज का युवा अनेक प्रकार के दबावों से घिरा है, उनका सामना केवल वही कर सकता है, जिसमें बलिष्ठता हो। बलिष्ठता का अर्थ केवल शारीरिक शक्ति नहीं, वरन् यह बुद्धिबल, आत्मबल, मानसिक दृढ़ता, भावनात्मक सन्तुलन, साहसिक निर्णय-क्षमता तथा आन्तरिक सामर्थ्य का सम्यक् समन्वय है। यह वह बल है, जो मनुष्य को विपरीत परिस्थितियों में भी स्थिर रखता है, जो उसे बार-बार उठ खड़ा होने की शक्ति देता है। आत्मबल वही है, जो भगवद्गीता में अर्जुन को विषाद से निकालकर युद्धभूमि में अडिग करता है। यह बल अभ्यास, संयम और आत्मनिष्ठा से आता है। बिना आत्मबल के विद्या का उपयोग असम्भव है। आज जब हर निर्णय लाखों लोगों की दृष्टि में आता है और सोशल मीडिया की तुलना का दबाव चरम पर है, तब आन्तरिक शक्ति ही है, जो युवा को अपनी पहचान, प्राथमिकताओं और मूल्यों पर टिकाए रखती है। यह बल नकारात्मक टिप्पणियों को समझदारी से ग्रहण करने, असफलताओं से उबरने और असहमतियों को सम्मानपूर्वक सहने से आता है।

३. दृढिष्ठः – संकल्प में अडिग रहो

दृढिष्ठ: का अर्थ है – जो अपने लक्ष्य के प्रति और संकल्प में अडिग रहे, जिसे न तो भय डिगा सके, न ही तात्कालिक हानि या विफलता। दृढ़ता वह गुण है, जो लक्ष्य की ओर निरन्तर प्रेरित करता है, चाहे मार्ग में कितनी भी बाधाएँ क्यों न हों। आज के युवाओं में एक बड़ी समस्या

है – अधूरी शुरुआत और जल्दी हार मान लेना। जीवन में लक्ष्य का निर्धारण आवश्यक है, लेकिन उससे भी अधिक आवश्यक है, उस लक्ष्य के प्रति दृढ़ निष्ठा। यह निष्ठा ही जीवन को सार्थक करती है। अत: डटे रहो, टिके रहो, अन्तत: विजय तुम्हारी होगी। जो व्यक्ति परिस्थितियों के अनुसार बार-बार अपने लक्ष्य को बदलता है, वह जीवन की किसी दिशा में गहनता नहीं प्राप्त कर सकता। दृढ़ता संकल्प की वह गहराई है, जो मनुष्य को अपने लक्ष्य के प्रति अडिग और अचल बनाए रखती है। आज जब हर क्षण एक नया कोर्स, एक नया करियर या एक नया ट्रेंड सामने आता है, तब विचलित होना सहज है। लेकिन दृढ़ वही होता है, जो एक बार चुने गए पथ पर विचारपूर्वक, गहराई से और धैर्य के साथ चलता है। वह आकर्षक किन्तु दिशाहीन करने वाले प्रलोभनों (shiny distractions) के पीछे नहीं भागता, बल्कि अपने अन्दर के वास्तविक कौशल को निखारने में समय लगाता है। लक्ष्य-केन्द्रित अध्ययन (फोकस्ड लर्निंग), निरन्तर निरीक्षण और व्यवस्थित जीवनशैली ही उसे लक्ष्य तक पहुँचाती है।

प्रेरणादायक उदाहरण : डॉ. गोविन्द स्वरूप

डॉ. गोविन्द स्वरूप भारतीय खगोलशास्त्र के पितामह माने जाते हैं। वे एक साधारण रेलवे कर्मचारी के पुत्र थे, जिनका जन्म उत्तर प्रदेश के थानेभवन नामक कस्बे में हुआ। उन्होंने प्रयागराज विश्वविद्यालय से भौतिकी में स्नातक किया और आगे की पढ़ाई अमेरिका में पूरी की। रेडियो खगोलशास्त्र में गहरी रुचि के कारण उन्होंने भारत लौटकर टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ फण्डामेण्टल रिसर्च (TIFR) में कार्य किया। उन्होंने ऊटी (Ooty) रेडियो टेलीस्कोप और पुणे स्थित विशालकाय GMRT (Giant Metre wave Radio Telescope) की स्थापना की। डॉ. गोविन्द स्वरूप ने आत्मबल और जिज्ञासा के बल पर भारत में रेडियो खगोलशास्त्र की नींव रखी। वे विश्वस्तरीय वैज्ञानिक बनकर विज्ञान में आत्मनिर्भर भारत की प्रेरणा बने। डॉ. गोविन्द स्वरूप का जीवन आशिष्ठ: बलिष्ठ: दृढिष्ठ: – इन तीनों गुणों का जीवन्त उदाहरण अर्थात् मूर्त रूप है। उन्होंने आशा (**आशिष्ठ:**) को कभी नहीं छोड़ा; संसाधनों की कमी, छोटे नगर का परिवेश और विज्ञान से दूर ग्रामीण पृष्ठभूमि होने के बावजूद अपने स्वप्नों को जीवित रखा और उच्चतम वैज्ञानिक उपलब्धियों तक पहुँचे। अमेरिका जाकर अध्ययन और शोध करना, फिर भारत लौटकर अपने देश में विज्ञान की नींव रखना, यह उनकी अन्त:प्रेरणा और आत्मबल (**बलिष्ठ:**) का परिचायक है। आर्थिक संकट, तकनीकी अवरोध और संस्थागत आलोचना के बीच भी उन्होंने कभी हार नहीं मानी, बल्कि आत्मबल से लड़ते रहे। परन्तु जो उन्हें असाधारण बनाता है, वह है उनका अडिग संकल्प (**दृढिष्ठ:**)। जब उन्होंने भारत में विश्वस्तरीय रेडियो दूरबीन (GMRT) की स्थापना का स्वप्न देखा, तो अधिकांश लोगों ने उसे असम्भव बताया; पर वे डटे रहे, पीछे नहीं हटे। इस प्रकार डॉ. गोविन्द स्वरूप का जीवन साक्ष्य है कि यदि कोई व्यक्ति आशावान हो, आत्मबल-युक्त हो और अपने संकल्प में अडिग रहे, तो वह न केवल असम्भव को सम्भव कर सकता है, बल्कि राष्ट्र को आत्मनिर्भरता की ओर भी प्रेरित कर सकता है। आर्थिक संकट, तकनीकी कठिनाइयाँ और आलोचना, इन सबके बीच उन्होंने कभी हार नहीं मानी, बल्कि आत्मबल से लड़ते उनके जीवन से यह सिद्ध होता है कि जो आशिष्ठ:, बलिष्ठ: और दृढिष्ठ: होता है, वही मानव जीवन को दिव्य बना सकता है। उनका जीवन विज्ञान में आत्मनिर्भर भारत का प्रतीक बन गया।

उपसंहार – आशिष्ठ: बलिष्ठ: दृढिष्ठ: आज के युवा के लिए एक आत्मविकास का सूत्र है, जो उसे न केवल व्यक्तिगत सफलता की ओर ले जाता है, बल्कि उसे एक सशक्त और जिम्मेदार नागरिक भी बनाता है। जब समाज में भ्रम हो, करियर में अनिश्चितता हो और भीतर असमंजस हो, तब यही सूत्र कहता है: आशा रखो, शक्ति अर्जित करो, और डटे रहो। जब कोई युवा इन तीनों गुणों को अपने भीतर समाहित कर लेता है, तभी वह भीतर से जाग्रत, जागरूक और समर्थ बनता है। आशा उसे दिशा देती है, बल उसे गति देता है और संकल्प उसे लक्ष्य तक पहुँचाता है। वस्तुत: यह उद्घोष आधुनिक युवाओं के आत्मविकास और चरित्र-निर्माण का एक कालजयी सूत्र है, जो उन्हें न केवल स्वयं को पहचानने का साहस देता है, बल्कि जीवन के कठिन मार्गों पर अडिग होकर आगे बढ़ने की शक्ति भी प्रदान करता है। इस प्रकार आशिष्ठ: बलिष्ठ: दृढिष्ठ: वास्तव में मानव-जीवन के आन्तरिक त्रिवेणी-संगम का निर्माण करता है, जहाँ जीवन के तीन पवित्र स्रोत एक साथ प्रवाहित होते हैं। ○○○

सम्बन्धों का सम्पोषण : सहभाजन एवं संरक्षण की कला

स्वामी निखिलेश्वरानन्द, सचिव, रामकृष्ण मठ, राजकोट

अनुवादिका – नम्रता वर्मा, पी.आई.वी. विभाग, दिल्ली

(गतांक से आगे)

सम्बन्धों के निर्वाह में श्रीरामकृष्ण देव की सहधर्मिणी श्रीमाँ सारदा देवी आदर्श हैं। उन्होंने अपने सम्बन्धियों के साथ, विशेषत: सुरबाला (पगली मामी) और उनकी बेटी राधू के साथ उत्कृष्ट सम्बन्ध बनाए रखा। यहाँ तक कि कुख्यात मुस्लिम डकैत अमजद के प्रति भी उनका व्यवहार मधुर था।

एक बार कलकत्ता में भीषण अकाल पड़ा। जनसामान्य अत्यधिक कष्ट में थे। तब दान भी नहीं मिल रहा था। सर्वत्र दुख, पीड़ा एवं कष्ट देखकर स्वामी विवेकानन्द अत्यधिक द्रवित हो गये। उन्होंने अकाल-राहतकार्य के लिए धन-संग्रह हेतु बेलूड़ मठ की जमीन बेचने का प्रस्ताव रखा। उनके गुरुभाई प्रस्ताव से चकित हो उठे, क्योंकि मठ के लिए भूमि प्राप्त करने में कई वर्षों का अथक परिश्रम लगा था। लेकिन स्वामी विवेकानन्द के क्रोध के भय से उनका विरोध करने का साहस नहीं हुआ। फिर वे श्रीमाँ सारदा देवी के पास गए। वे जानते थे कि स्वामी विवेकानन्द उनकी आज्ञा का अनुपालन करेंगे। भक्तों के प्रस्ताव को सुनने के बाद, उन्होंने स्वामी विवेकानन्द को बुलाया। स्वामीजी ने कहा, 'हम अकाल-राहत के लिए पैसे जुटाने के लिए जमीन बेच देंगे। मैं चारों ओर लोगों की पीड़ा और कठिनाईयों को नहीं देख सकता। भिक्षुओं के रूप में हम वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान कर सकते हैं।'' इस पर माँ ने कहा, ''तुम वृक्ष के नीचे बैठकर ध्यान कर सकते हो। परन्तु मेरे बहुत से सन्तानों के विषय में विचार करो, जो भविष्य में यहाँ आएँगे। क्या उन्हें एक ऐसे स्थान की आवश्यकता नहीं है, जहाँ वे प्रार्थना, ध्यान, भोजन एवं विश्राम कर सकें? अगर भूमि एवं मठ ही नहीं रहे, तो भविष्य में राहत कार्य कैसे हो पाएगा?'' हालाँकि माँ के पास कोई औपचारिक शिक्षा नहीं थी, लेकिन उनके पास अनन्त व्यावहारिक ज्ञान था। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द से पूछा, ''क्या उन्होंने जमीन बेचने के लिए मठ के ट्रस्टियों से परामर्श लिया था?'' जब स्वामी विवेकानन्द ने नकारात्मक उत्तर दिया, तो उन्होंने कहा, ठीक है, मैंने उनसे परामर्श किया है और वे जमीन बेचने के लिए सहमत नहीं है। स्वामी विवेकानन्द को चुपचाप पीछे हटना पड़ा और इस तरह स्थिति सँभल गई।

श्रीमाँ सारदा देवी का प्रसिद्ध उपदेश था ''यदि तुम मानसिक शान्ति चाहते हो, तो किसी के दोष मत देखना। दोष देखना अपने स्वयं के।'' इस संसार में कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न मात्रा में सकारात्मक और नकारात्मक गुण होते हैं। केवल सकारात्मक गुण और केवल नकारात्मक गुणों वाला कोई नहीं है। यहाँ तक कि उस समय के प्रसिद्ध बंगाली उपन्यासकार, नाटककार और कवि गिरीश चन्द्र घोष भी, जो अपने मद्यपान और सभी सम्भावित दुर्गुणों के लिए जाने जाते थे, जब वे श्रीरामकृष्ण के पास आए, तो श्रीरामकृष्ण ने केवल उनका सकारात्मक पक्ष देखा। उन्होंने कहा कि, 'गिरीश की भगवान में आस्था के लिए प्रशंसा की जानी चाहिए।' इस कथन और श्रीरामकृष्ण द्वारा उनके प्रति किए गए दयालु व्यवहार से कवि इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने सभी दोषों को त्याग दिया और स्वयं को एक सन्त के रूप में परिवर्तित कर लिया। यदि आप सभी का केवल सकारात्मक पक्ष देखते हैं, तो ऐसी परिवर्तन की शक्ति आती है।

(स) संवाद, एकाग्रता और देखभाल – किसी भी सम्बन्ध को बनाए रखने के लिए संवाद महत्त्वपूर्ण है। संवाद

की कमी या गलत संवाद के परिणामस्वरूप गलतफहमी हो सकती है एवं सम्बन्ध-विच्छेद होता है। जितना अधिक संवाद, उतना बेहतर सम्बन्ध। सम्बन्ध को स्वस्थ रखने में एकाग्रता और देखभाल की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परिवार के सदस्यों की साप्ताहिक बैठकें हों, जिनमें उन्हें एक-दूसरे के प्रति अपनी नाराजगी व्यक्त करने की स्वतन्त्रता हो। इससे पारिवारिक सदस्यों के मध्य संवाद की खाई को पाटने में सहायता मिलेगी। दूसरों की देखभाल करने का अर्थ केवल दूसरों की सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना नहीं है, बल्कि इसका अर्थ दूसरों के विचारों का भी सम्मान करना है।

(द) अनुशासन, समर्पण एवं निष्ठा – उत्कृष्ट सम्बन्धों को बनाए रखने के लिए उचित अनुशासन, समर्पण एवं निष्ठा की आवश्यकता है।

(इ) भावनात्मक परिपक्वता – बौद्धिक स्तर (IQ) एवं भावनात्मक स्तर (EQ) स्थायी सम्बन्ध बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण कारक हैं। आत्म जागरूकता, भावात्मक नियन्त्रण, सहानुभूति, उत्साह एवं प्रेरणा भावनात्मक स्तर (EQ) के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ हैं। किसी भी सम्बन्ध-निर्वाह हेतु भावनात्मक परिपक्वता की आवश्यकता होती है।

सहनशीलता, भूलना और क्षमा करना – सहनशीलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण जापानी प्रधानमन्त्री ओ'ओसन का है, जिनके विस्तृत परिवार में २०० सदस्य थे एवं वे सभी पूर्ण सद्भाव और प्रसन्नता के साथ रहते थे। कहा जाता था कि परिवार के पालतू कुत्ते भी आपस में नहीं लड़ते थे। जापान के सम्राट इस रहस्य को जानने के लिए उत्सुक थे और उन्होंने प्रधानमन्त्री को बुलाया। उन्होंने प्रधानमन्त्री से सफलता के शत मन्त्र देने का अनुरोध किया, ताकि वे परिवार में सद्भाव बनाए रखने के लिए उन्हें अपनी प्रजा में प्रसारित कर सकें। उन वृद्ध व्यक्ति ने कम्पित हाथों से एक कागज में सौ बार सहनशीलता, सहनशीलता लिखकर कागज सम्राट को सौंप दिया। किसी परिवार, समुदाय या समाज में सौहार्दपूर्ण ढंग से रहने के लिए सहनशीलता सर्वोपरि है। जो सहन कर सकता है, वह जीवित रहेगा, जो सहन नहीं कर सकता, वह नष्ट हो जाएगा। इसी प्रकार अप्रिय अतीत की विस्मृति और क्षमाशीलता सम्बन्ध को पुष्ट करती है। आप जितना अधिक क्षमा करेंगे, सम्बन्ध उतने ही बेहतर होंगे।

चिरस्थायी सम्बन्ध – हम सभी जीवन में पूर्णता के लिये व्यग्र हैं। संत कबीर के प्रसिद्ध दोहे में मनुष्य की सफलता का उल्लेख इस प्रकार है –

कबीरा जब हम पैदा हुए, जग हँसे हम रोये ।
ऐसी करनी कर चलो, हम हँसे जग रोये ।।

सदाचारी जीवन-यापन, अच्छे कर्म करना, किसी को चोट न पहुँचाना और दूसरों की सेवा करना, हमारे जीवन को इतना आनन्दमय बना देगा कि हम इस संसार से विदा लेते समय प्रसन्न होंगे, जबकि हमारे आस-पास के अन्य लोग ऐसे महान व्यक्ति के जाने पर रो रहे होंगे। यही जीवन की पूर्ण सन्तुष्टि है। किसी भी प्रकार की धनराशि सच्चा प्रेम उत्पन्न नहीं कर सकती। सच्चे प्रेम और स्नेह के लिए हम अपने समय का निवेश करें। प्रत्येक व्यक्ति असीम प्रेम, आनन्द, सुख और शान्ति चाहता है, क्योंकि मनुष्य का जन्म ही इसलिए हुआ है। कोई पूछ सकता है, 'लेकिन तुम प्रेम क्यों करना चाहते हो?' एरिक फ्राम ने इसे सुन्दर ढंग से व्याख्यायित किया है – यह और कुछ नहीं, बल्कि तादात्म्य का मनोविज्ञान है। मनुष्य एक दूसरे से प्रेम करते हैं, एक दूसरे के साथ रहना चाहते हैं, क्योंकि वे एकत्व के आकांक्षी हैं। परन्तु हमें याद रखना होगा कि दो बुलबुले साथ नहीं रह सकते, चाहें वे कितना भी प्रयास कर लें। एक दिन वे फट जाएँगे। उनके पास अनन्त सम्बन्ध तभी हो सकता है, जब वे सागर के साथ एकाकार हो जाएँ। प्रेमयोग नामक पुस्तक में स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – ''दो अनित्य तत्त्वों में नित्य प्रेम नहीं हो सकता।'' कहने का तात्पर्य है, दो परिवर्तनशील तत्त्वों में अपरिवर्तनीय प्रेम नहीं हो सकता।

'आत्मन्' (व्यक्तिगत आत्मा) जो हम में से प्रत्येक के भीतर है और अनन्त परमात्मा (सार्वभौमिक आत्मा), जो अनन्त दिव्य वास्तविकता या सर्वोच्च दिव्य चेतना है। इसे 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् – परम सत्य, परम प्रेम, परम सौन्दर्य कहा जाता है। मृत्यु के साथ ही अन्य साथी प्राणियों से प्रेम या सम्बन्ध समाप्त हो जाएगा। लेकिन सार्वभौमिक आत्मा के साथ व्यक्तिगत आत्मा का प्रेम या सम्बन्ध कभी समाप्त नहीं हो सकता। यह चिरस्थायी है। यह शाश्वत सम्बन्ध है। यदि हम स्वयं की पहचान अनन्तता के साथ करते हैं, तो वह विनष्ट नहीं होता। लेकिन यह केवल SQ (आध्यात्मिक गुणक) के विकास के साथ हो सकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने कहा – 'प्रत्येक आत्मा में दिव्यता निहित है। मानव-जीवन का लक्ष्य आन्तरिक एवं बाह्य प्रकृति के नियन्त्रण से दिव्यता की अभिव्यक्ति है। इसके लिये योग के चार मार्गों कर्म, ज्ञान, भक्ति एवं राजयोग का पालन करना पड़ता है। नि:स्वार्थ कर्म एवं सेवा कर्मयोग का पथ है। शास्त्रों एवं श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन, सकारात्मक चिन्तन ज्ञानयोग का पथ है। भक्तियोग में ईश्वर के प्रति भक्ति, प्रार्थना और जप सम्मिलित है। ऋषि पतंजलि के अष्टांग योग में उल्लेखित मन पर निग्रह राजयोग के अन्तर्गत है। हम जितना अधिक इन चारों योगों का अभ्यास करेंगे, उतने ही अधिक दिव्य होंगे। आधुनिक क्वांटम यान्त्रिकी ने सिद्ध कर दिया है कि हमारा ब्रह्मांड समग्र है। यदि हम दूसरों को धोखा देते हैं या उनका शोषण करते हैं, तो हमें मानसिक शान्ति नहीं मिलेगी, यही कर्म का नियम है। एक बार जब हम अनन्त के साथ एकाकार हो जाते हैं, तो हमें चिरस्थायी सम्बन्ध एवं प्रेम प्राप्त होता है। यदि हम स्वयं एवं सर्वभूतों में ईश्वर का ही दर्शन करते हैं, तो हम दूसरों की देखभाल एवं सेवा करने के लिए समर्पित हो सकेंगे। आइए, ध्यान में श्वास भीतर लें एवं सेवा की श्वास बाहर करें। आइए हम अनन्त, प्रेम, आनन्द, शान्ति के साथ एकाकार हो जाएँ।

इसीलिए आइए, हम सभी सम्बन्धों को दिव्य सम्बन्ध में रूपायित करें। माता, पिता, गुरु, अतिथि सभी परमात्मा के प्रतिरूप हैं। मोह आनन्द लाता है, लेकिन यह सभी दुखों का स्रोत भी है। आसक्ति के सामान अनासक्ति की भी शक्ति होनी चाहिए, जो आध्यात्मिक गुण के विकास से ही सम्भव है।

मैं महान अन्तिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर द्वारा विरचित गीत, जो स्वामी विवेकानन्द को बहुत प्रिय था, उससे अपना व्याख्यान समाप्त करूँगा। उन्होंने लिखा –

तुझसे हमने दिल को लगाया जो कुछ है, सो तू ही है।

विभिन्न धर्मों और मान्यताओं के लोगों द्वारा चुने गए भगवान के नाम, रूप और पथ अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन वे सभी एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं। श्रीरामकृष्ण ने बारी-बारी से सभी धर्मों का पालन किया और एक ही बात कही। यही सभी धर्मों का सार्वभौमिक संदेश है। नि:स्वार्थ प्रेम एवं समस्त सांसारिक सम्बन्धों को ईश्वरीय सम्बन्ध में रूपायित करने के परिणामस्वरूप परमानन्द, प्रसन्नता, तादात्म्य एवं शान्ति की प्राप्ति होगी। ○○○ **(समाप्त)**

(स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी द्वारा 'अहमदाबाद मैनेजमेन्ट एसोसिएशन' में प्रदत्त भाषण के सारांश का हिन्दी अनुवाद है।)

पृष्ठ ५४० का शेष भाग

परम्परा का अनुयायी हो, उसे तान्त्रिक साधना कहा जाता है। वेदान्त और तन्त्र का मूल सिद्धान्त अद्वय ब्रह्म की उपलब्धि में कोई विरोधाभास नहीं है।

श्रीरामकृष्ण संन्यास लेने के बाद पुरी सम्प्रदाय के श्रीकुल के अन्तर्गत आ गए। रामकृष्ण संघ की अंग्रेजी पत्रिका 'प्रबुद्ध भारत' के दिसम्बर, १९९२ अंक में तत्कालीन महासचिव स्वामी हिरण्यमयानन्द जी महाराज फलहारिणी पूजा का महत्त्व बताते हुए कहते हैं, श्रीरामकृष्ण ने अपनी साधना काली-कुल में आरम्भ की थी और साधना की समाप्ति श्रीकुल की थी। दक्षिण भारत में तन्त्र-साधना क्रम परशुराम कल्पसूत्र पर आधारित है और वहाँ उसी का अनुसरण होता है। परशुराम सूत्र में श्रीकुल की मुख्य देवी को संयम साम्राज्ञी कहा गया है। श्रीषोडशी देवी साम्राज्ञी हैं – सभी देवियों में रानी हैं। श्यामा या काली उनकी मुख्य सहचरी हैं। इसीलिए श्रीविद्या की पूजा के लिये पहले श्यामा की पूजा की जानी चाहिए। राजा की पूजा करने के लिए पहले मन्त्री को प्रसन्न करना चाहिए, इसलिये साधक काली उपासना में सिद्धि प्राप्त करने के बाद श्रीविद्या या साम्राज्ञी षोडशी देवी की पूजा तक भी पहुँच जाता है। लेकिन हमें यह भी याद रखना चाहिए कि काली और षोडशी स्वरूपत: अभिन्न हैं। केवल साधना क्रम में उपासना-विधि के अनुसार यह भेद सहायक रूप में दिखाया गया है। नारद पाञ्चरात्र में यह उल्लेख है कि काली स्वयं ही षोडशी महात्रिपुरसुन्दरी रूप धारण की हैं और शिव ने उनको यह नाम प्रदान किया है। ○○○ **(अगले अंक में समाप्य)**

सन्दर्भ सूत्र – १. देवी भागवत, ७.३.८.३ **२.** प्राधानिक रहस्य ४ **३.** देवी कवच ४३ **४.** श्रीदुर्गासप्तशती, १.५७ **५.** वही,१.७९ **६.** वैकृतिक रहस्य ६ **७.** श्रीदुर्गासप्तशती, ४.२५ **८.** वही, ५.७७ **९.** वही, १०.५ **१०.** वही, ११.६

श्रीरामकृष्ण-स्तुति-८

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(तर्ज-भये प्रगट कृपाला दीन दयाला)

गीता सो जाना, जो उर आना, त्याग-भाव अरु सेवा ।
जो जग में देखै, हरि सम लेखै, करि शिवज्ञान से सेवा ।।
सब नर-नारायण को पारायण करै मानि हृदिदेवा।
मन निश्छल राखै, हरिगुण भाखै, कहि जय जय नरदेवा ।।९२।।
माता जब जाना, पुत्र अमाना, सकल शास्त्र समझाया ।
सब मुख में राखा, भक्तन भाखा, जब जहँ अवसर आया ।।
जो व्याकुलभावा, शरण में आवा, सबको ही अपनाया ।
कर कीर्तनगाना, हरिगुणगाना, दीन्हीं भक्ति-सुछाया ।।९३।।
तव अद्भुत लीला, प्रिय सुखशीला, मथुरनाथ जब जाना।
माना नर-देवा, करके सेवा, जीवन सार्थक माना ।।
देखा हरिलीना, तन्मय दीना, अति कातर स्वर रोए ।
हो परम विकल, करि भक्ति अटल, तन की सब सुधबुध खोए।।९४।।
कोठी रहि देखा, चरित अशेषा, अनुपम तरुण पुजारी ।
करि माता-पूजन, अर्चन-वन्दन, रोदन करता भारी ।।
अति विस्मयकारी, है अविकारी, यह पूजक-पदधारी ।
करि विविध परीक्षा, साधु तितिक्षा, मन-संदेह-निवारी ।।९५।।
नर देह अनूपा, भगवत्-रूपा, सेवा हित नर पायो।
सेवा निष्कामा, से सुखधामा, मिलै शास्त्र सब गायो ।।
यह हृदय विचारी, रहि अविकारी, करै जो सेवा-धरमा ।
सो प्रभु को पावत, हरि गुणगावत, करि सेवा-सत्करमा ।।९६।।
ईश्वर अविनाशी, घट-घट वासी, करै जीव उर-वासा।
नर हो अभिमानी, हरि-अज्ञानी, रखता अमित दुराशा।।
हरि रह नर-अन्तर, नहिं हरि में नर, इसीलिए भव-पाशा।।
जो अस उपदेशा, प्रभु परमेशा, सो मम उर-अभिलाषा ।।९७।।
यह जग अति सुन्दर, उपवन-अन्दर, हरि-स्वामी करैं वासा।
नर रहै लुभाई, प्रियफल खाई, सूंघै सुमन सुवासा ।।
जो परम विवेकी, मन मुख एकी, खोजै प्रभु हो दासा ।
जानै जग-मर्मा, करि हरि-प्रेमा, पावै जगन्निवासा ।।९८।।
जो मानव तन धरि, करै भजन हरि, सब जग हरिमय जानै।
सेवा निष्कामा, करि सुखधामा, निज स्वरूप पहचानै।।
सो कर निज जीवन, धन्या सुपावन, ईश्वर-छवि उर आनै।
कर साधु-सेवा, भजन नरदेवा, भक्तन हरि-सम मानै ।।९९।।
जय जय नरदेवा, तव पद सेवा, करके धन्य नरेन्द्रा ।
जो रहि संसारा, धन-मद-हारा, उसमें भक्त सुरेन्द्रा।।
प्रभु अमृतबानी, लिखी सुहानी, मास्टर नाम महेन्द्रा।
जपि नाम सुपावन, तव जगपावन, पाई भक्ति उपेन्द्रा ।।१००।।
हे जन-उपकारी, भवदुखहारी, रामकृष्ण सुखरूपा।
मम उर अघ-अवगुण, बसि बहु दुर्गुण, त्रासहिं अगणित रूपा।।
हे जीवननाथा, तव गुणगाथा, नाशक अघ-भवकूपा।
अब शरण में आया, भक्ति-सुछाया, दो प्रभुदेव अनूपा।।१०१।।
हे हरि मम जीवन, परम अपावन, विषयाधीन पुराना ।
मन में कुटिलाई, अति अधमाई, सुनै न शास्त्र-पुराना ।।
तव नाम सुपावन, सुनि जगपावन, इच्छा प्रभु गुणगाना ।
जिससे अघनाशैं, नहिं मुख-ग्रासैं, लोभ-मोह-मदमाना ।।१०२।।
हरिभक्ति सुहानी, करि अघ-हानी, रहै हृदय जब छाई।
नर हरिमदमत्ता, तद्गतचित्ता, हरिपद रहै लुभाई।
हरिभक्ति सुनारी, कल्मषहारी, हरि-अन्तःपुर जाई ।
माया-मतिनाशी, चिद्घनराशी, दरश देत सुखदाई ।।१०३।।
बिन भजन-विरागा, मोह न भागा, हरिपद-प्रीति न होई ।
हरिभक्ति समाना लाभ न आना, प्राप्तव्य नहिं कोई ।।
बिनु हरि-सत्संगा, नहिं भव भंगा, मिटै कपट कुटिलाई ।
यह जानि असंगा, रहि सत्संगा, करो भजन हे भाई ।।१०४।।
हरि भक्ति पुनीता, पाइ अभीता, रहो जगत में भाई ।
कर नित्य प्रणामा, आठों यामा, रहो शरण सुखदाई ।।
जो परम उदारा, दिन दो बारा, भक्तनकृत परनामा ।
मानत अधिकाई, सुख शरनाई, राखहु सो सुखधामा ।।१०५।।
जय जय जगजननी, मतिमलहरनी, भगवति सारदारूपा ।
ठाकुर-संग आई, जय महामायी, जीवन दिव्य अनूपा।।
प्रभुलीला सहचरि, भावविमलकरि, तेजमयी तपरूपा।
हे आद्याशक्ती, निर्मलभक्ती, दान करो सुखरूपा ।।१०६।।
प्रिय शिष्य नरेन्द्रा, हर-मनुजेन्द्रा, हुए विवेकानन्दा ।
मण्डल सप्तरषी, के ब्रह्मरषी, दिव्य सच्चिदानन्दा ।।
गुरु-आज्ञाकारी, बल-संचारी, कालजयी सन्देशा ।
सो मम उर-अन्तर, बसो निरन्तर, करि संन्यासी वेशा ।।१०७।।
प्रभु लीला सहचर, इस धरती पर, प्रभु-संग जो आए ।
शरणागत होकर, अनुगत बनकर, जीवन दिव्य बनाए ।।
शुभ पदरज पावन, से यह जीवन, भक्ति रत्नधन पाए ।
करो कृपादृष्टि, शुभ भक्तिवृष्टि, अब हम भी शरण में आए ।।१०८।।

○○○ (समाप्त)

वैराग्य-सुख का अनुभव कीजिये

स्वामी सत्यरूपानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ, प्रयागराज के अध्यक्ष और रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव थे।)

मनुष्य जीवन कितना महान है! मनुष्य योनि कितनी महान है! संसार असार है, यह छूट जायेगा। इस बात का विचार करने से, इन तीनों विचारों का पोषण करने से अपने आप वैराग्य आ जायेगा। वैराग्य शब्द से डरिये मत। शब्दों से कई बार हम डर जाते हैं। वैराग्य का तात्पर्य यह नहीं है कि आप सबको सिर मुड़ाकर बाबाजी होना पड़ेगा। वैराग्य के सुख का वही अनुभव कर सकता है, जिसने जीवन में थोड़ा भी उसका स्वाद चखा हो।

वैराग्य क्या है? आप बीस वर्ष की उम्र में, पच्चीस वर्ष की उम्र में जिन रुचियों में निमग्न थे, जिन विचारों का पोषण कर रहे थे, पचास वर्ष की अवस्था में क्या उन विचारों-भोगों से आप विरक्त नहीं है? यदि विरक्त नहीं हैं, तो जीवन बहुत अशान्त है। आप यह बिल्कुल जान लीजिए, पच्चीस वर्ष की उम्र में जो व्यवहार करते थे, यदि पचास वर्ष की उम्र में भी वही व्यवहार चल रहा है, चाहे मैं हूँ या आप हों, कोई भी हो, तो यह मूर्खता है। जिन लोगों ने यह समझ लिया कि अरे मूर्खता की बात है पच्चीस वर्ष में जो करते थे, अब उसकी हमें आवश्यकता नहीं है। छोड़ो और शान्ति से रहो। अब पचास वर्ष में अत्यन्त शान्ति है। इसका नाम वैराग्य है। जो वस्तु अब हमारे लिए उपयोगी नहीं, उसे छोड़ दिया, उसकी ओर से विरक्त हो गये। इस वैराग्य में परम सुख है। जिन्होंने छोड़ा है, वही इस सुख का अनुभव कर सकते हैं।

मैंने एक बार पहले भी आपको बताया था। कई बार ऐसे अनुभव आपके हमारे जीवन में भी होंगे। मेरे एक परिचित मित्र हैं। वे चेन-स्मोकर थे। लगातार स्मोकिंग करते थे। उससे वे बहुत अस्वस्थ भी हुये। बहुत खर्चा हुआ। बहुत दिनों बाद संयोग से उनसे भेंट हुई। उस शहर में मैं व्याख्यान देने के लिए गया था। समाचार-पत्रों में उन्होंने पढ़ा और मेरा चित्र देखा कि अरे ये तो हमारे मित्र हैं। वे मिलने के लिए आये। उनसे चर्चा हुई। मैंने उनसे पूछा कि भाई कैसे हो? प्रणाम करके कहने लगे – भैया, आप कहा करते थे कि छोड़ने का भी एक सुख है। अब मैं सोलह आने समझ रहा हूँ कि छोड़ने का क्या सुख है! मैंने पूछा, क्या छोड़ा? उन्होंने कहा – पाँच वर्ष हो गये, मैंने सिगरेट पीना छोड़ दिया। मुझे बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने बताया था कि पच्चीस साल चैन स्मोकिंग करके मुझे जो सुख मिला, उससे करोड़ों गुना अधिक सुख मुझे उसे छोड़कर मिल रहा है। जीवन में इस छोड़ने के सुख का अनुभव करने का अधिकार हम में से प्रत्येक को है। बहुत-सी ऐसी वस्तुएँ हैं, जिन्हें आप विचार कर छोड़ सकते हैं।

अत: हमें सुख हेतु वैराग्य का आश्रय लेना चाहिए। कैसे आश्रय लेना चाहिए? मनुष्य या हमारे आपके लिये कैसी आध्यात्मिक चर्या होनी चाहिये, गीता में उसका वर्णन है –

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ।।
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।।
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

(गीता, १८/५१-५३)

साधक-साधिका को सत्संग करना चाहिए। साधु-संग करना चाहिए। कई बार यह समस्या आती है कि सत्संग या साधु-संग नहीं मिल पाता है। साधु-संग भले ही न मिले, सत्संग तो हम कर सकते हैं। उसका विकल्प है, सद्ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिए, उसकी धारणा करनी चाहिये। सत्कार्य करना चाहिए। सत्संग, सद्ग्रन्थ और सत्कर्म; ये तीन चीजें बुद्धि को शुद्ध करती हैं। ऐसी बुद्धि, जो सत्संग से शुद्ध हो गयी है, सत्संग या सद्ग्रन्थ के स्वाध्याय से शुद्ध हो गयी है, सत्कर्म की अभ्यस्त है, वह आपको कठिनाई के क्षणों में बचायेगी। जब जीवन में कठिनाई आयेगी, जब कई प्रलोभन के प्रसंग आयेंगे, जिससे जीवन भर आपको पछताना पड़ सकता है, तो नीर-क्षीर विवेक करके हम उस समय बच जायेंगे। ○○○

श्रीरामकृष्ण-गीता (५३)

(द्वादश अध्याय १२/१)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

द्वादशोऽध्यायः

साधनान्तरायाः

श्रीरामकृष्ण उवाच

सुषिरं क्षुद्रमेकं चेदलिंजरे तु वर्तते ।
तत्रस्थं निखिलं तोयं विनिर्याति क्रमे क्रमे।।१।।

– श्रीरामकृष्ण ने कहा – यदि घड़े में कहीं एक छोटा-सा भी छेद हो, तो सारा जल धीरे-धीरे निकल जाता है।

संसारासक्तियुक्तं चेन्मनस्तद्वन्मनागपि।
साधना साधकानां तु सकला विफला भवेत् ।।२।।

– वैसे ही साधक के मन में यदि थोड़ी सी भी संसार के प्रति आसक्ति हो, तो उसकी सारी साधना विफल हो जाती है।

अपक्वा मृत्तिका यावत् सृष्टिस्तावद् भवेत् तया।
दग्धीभूता यदा सेयं सृष्टिस्तु नैव सम्भवेत् ।।३।।

– जब तक मिट्टी कच्ची रहती है, तब तक उससे बर्तन बनाया जाता है, उसके पक जाने पर कुछ भी निर्माण नहीं होता।

हृदयस्य नितरां दग्धं विषयबुद्धिवह्निना।
भावरूपं न गृह्णाति तथा तत् पारमार्थिकम् ।।४।।

– जिनका हृदय विषय-अनल से पूर्णतः जल गया है, वह परमार्थ-भाव को ग्रहण नहीं कर पाता।

शर्करासिक्तानाञ्च मिश्रणाद्वै पिपीलिकाः
सिक्तास्तु परित्यज्य यथाहरन्ति शर्करा ।।५।।

– चीनी में बालू मिलने पर जैसे चींटी बालू छोड़कर चीनी खा लेती है।

तद्वत् परमहंसाश्च साधवश्चेह संसृतौ ।
सद्वस्तु सच्चिदानन्दं तमेव सारमुत्तमम् ।।६।।
सर्वदा परिगृह्णन्ति षट्पदा इव शर्कराम् ।
त्यजन्ति चाप्यसद्वस्तु सर्वं यत् कामकाञ्चनम् ।।७।।

– वैसे ही साधु और परमहंस लोग इस संसार में सर्वश्रेष्ठ साररूप सद्वस्तु जो सच्चिदानन्द हैं, उन्हें ही ग्रहण करते हैं और सभी असद् वस्तु काम-कांचन का त्याग करते हैं। जैसे चींटियाँ बालू से चीनी ले लेती हैं।

पत्रं चेत् स्नेहसंसिक्तं न तत्र लिखनं भवेत् ।
काम-कांचन-तैलेन सिक्तं चेज्जीव-मानसम्
जीवैरेभि तथैवापि साधनं नैव सम्भवेत् ।।८।।

– कागज में तेल लग जाने पर उस पर लिखा नहीं जाता, वैसे ही जीव के मन में काम-कांचन का तेल लगे रहने पर उससे साधना करना सम्भव नहीं होता।

पत्रं स्नेहावलिप्तं चेत् खडिकामार्जितं भवेत् ।
पुनस्तल्लेखपत्रं तु लिखनाय हि युज्यते ।।९।।

– उसी तेल लगे हुए कागज को सूती कपड़े से घिस देने पर वह पुनः लिखने के योग्य हो जाता है।

काम-कांचन-तैलेन लिप्तं जीवमनस्तथा ।
मृष्टं त्यागकाठिन्या चेल्लभेत साधनयोग्यताम् ।।१०।।

– वैसे ही जीव के मन में काम-कांचन का तेल लगने पर उसे त्याग रूपी सूती कपड़े द्वारा घिसने पर वह साधना करने की योग्यता प्राप्त कर लेता है।

स्वयं धर्मकथाप्रश्नं नैव कुर्वन्ति ये जनाः।
उपहसन्ति चान्यांस्तान् ध्यान-पूजापरायणान् ।
निन्दन्त्यपि पुमांसस्ते सततं धर्मधार्मिकान् ।।११।
कदा साधनकाले तु नैतेषां संगतिं भज।
तिष्ठाशेषेण चैतेभ्यः दूरतः सर्वदैव हि ।।१२।।

– जो लोग स्वयं कभी धर्म-चर्चा नहीं करते, दूसरे को ध्यान-पूजा करते देखकर उपहास करते हैं, धर्म-धार्मिकों की निन्दा करते हैं, साधना-अवस्था में कभी ऐसे लोगों का संग मत करना। उनलोगों से सर्वदा दूर रहना। **(क्रमशः)**

गीतातत्त्व-चिन्तन

चौदहवाँ अध्याय (१४/५)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १४वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

सत्त्व, रज और तम के लक्षण

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत।।११।।

यदा अस्मिन् देहे सर्वद्वारेषु (जिस समय इस देह में, मन, इन्द्रियों में) प्रकाश: ज्ञानम् उपजायते (चेतनता और विवेक उत्पन्न होता है) तदा इति विद्यात् (उस समय ऐसा जानना चाहिए) उत सत्त्वम् विवृद्धम् (कि सत्त्वगुण बढ़ा है)।

''जिस समय इस देह में, मन इन्द्रियों में चेतनता और विवेक उत्पन्न होता है, उस समय ऐसा जानना चाहिए कि सत्त्वगुण बढ़ा है।''

अब भगवान कृष्ण कहते हैं – ये कैसे जाना जाए कि कब हममें सत्त्वगुण प्रबल हो गया, कब रजोगुण या तमोगुण प्रबल हो गया? वे इसको जानने का लक्षण या उपाय बता देते हैं। इस देह में जितने भी प्रवेश द्वार हैं, जैसे मन, बुद्धि, अन्त:करण और इन्द्रियाँ इन सबके माध्यम से हम ज्ञान पाते हैं। जिस समय इन द्वारों में प्रकाश उपजता है, चेतनता आती है, विवेक शक्ति उत्पन्न होती है, तब ऐसा समझना चाहिए कि सत्त्वगुण बढ़ा है। ऐसी स्थिति में हम तत्त्व को ग्रहण कर पाते हैं, जिससे हमारी समस्याओं का समाधान हो जाता है। इसका तात्पर्य क्या है? इसका तात्पर्य यही है कि इस अवस्था में हमारे भीतर सत्त्वगुण बढ़ा है। जब यह सत्त्वगुण बढ़ता है और हम अपनी साधना या जप-ध्यान का अभ्यास करते हैं, तब साधना अच्छी तरह जमती है। जब मन सत्त्वगुण में स्थित रहता है, तब साधना करने से उस साधना का फल कई गुना अधिक मिलता है। जब हमारा मन ऐसी स्थिति में होता है, तो एक अनिर्वचनीय आनन्द की उपलब्धि होती है। ऐसा कभी-न-कभी प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में होता है। मेरे एक मित्र हैं – उन्होंने कहा कि उन्हें स्वप्न के माध्यम से आनन्द मिलता है। उन्हें कैसे स्वप्न आते हैं? वे कहने लगे कि उन्होंने एक दिन सपना देखा। वे सपने में देख रहे हैं कि एक बहुत सुन्दर झरना पहाड़ों से फूटकर गिर रहा है और वे उस झरने के स्रोत की तलाश में धीरे-धीरे ऊपर की ओर जा रहे हैं। एक-एक सोपान चढ़ते हैं, चट्टानों पर से होते हुए ऊपर जा रहे हैं। झरना अपने पूरे वेग से बहता हुआ आ रहा है। झरने के छींटे उनके शरीर पर पड़ रहे हैं और अचानक उन्होंने देखा कि जहाँ से झरना आ रहा है, वहाँ पर भगवान शिव बैठे हैं। उनकी जटाओं से गंगाजी निकल रही हैं। वह झरना नहीं, बल्कि गंगाजी हैं। यह दृश्य उन्होंने सपने में देखा। वे सपने में ही इतने मुग्ध हो गये कि भगवान शंकर के चरणों में जाकर गिर पड़े। इस प्रकार से वे चढ़ने लगे, उनका पैर फिसला, वे गिर पड़े, चोट खा गये और उसी समय उनकी नींद भी खुल गयी। यह उनकी स्वप्न की बात है। अब इस सपने की बात उन्होंने मुझे बताई, तो मैंने उनसे कहा कि यह तो आपके लिए ध्यान का बहुत बड़ा विषय है। आप कभी भी उस सपने को अपने मन में दुहरा सकते हैं। उस सपने के विषय को पुन: स्मरण कर वे उस पर ध्यान कर सकते हैं, जिससे उन्हें आनन्द की अनुभूति हो सकती है। इस प्रकार सत्त्वगुण के प्राबल्य से हल्कापन एवं ज्ञान के प्रकाश का बोध होता है। रजोगुण के बाहुल्य से क्या होता है? भगवान कहते हैं –

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ।।१२।।

भरतर्षभ रजसि विवृद्धे (हे अर्जुन! रजोगुण के बढ़ने पर) लोभः प्रवृत्तिः कर्मणाम् आरम्भः (लोभ, स्वार्थबुद्धि, सकाम कर्मों का आरम्भ) अशमः स्पृहा (अशान्ति, विषयभोगों की लालसा) एतानि जायन्ते (ये सब उत्पन्न होते हैं)।

''हे अर्जुन! रजोगुण के बढ़ने पर लोभ, स्वार्थबुद्धि, सकाम कर्मों का आरम्भ, अशान्ति, विषयभोगों की लालसा ये सब उत्पन्न होते हैं।''

यहाँ पर यह बता रहे हैं कि एक-एक गुण जब बढ़ता है, तो उसके क्या-क्या लक्षण होते हैं। रजोगुण बढ़ने से लोभ बढ़ता है। इसके फलस्वरूप हमें कहीं भी सन्तोष नहीं मिलता। जितना भी धन मिले, पर सन्तोष नहीं होता। मन के भीतर और अधिक पाने की योजना बनने लगती है। यह एक मानसिक प्रवृत्ति आरम्भ हो जाती है। उसी के अनुसार शरीर काम करने लगा। इस **अशमः स्पृहा** – अर्थात् जहाँ शं या शान्ति न हो, ऐसी स्पृहा या चेष्टा आरम्भ हो जाती है। विषय-भोगों की लालसा आ जाती है। ये सब रजोगुण के बढ़ने के लक्षण हैं। तमोगुण की वृद्धि होने से क्या होता है? अगले श्लोक में भगवान कहते हैं –

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन।।१३।।

कुरुनन्दन (हे अर्जुन!) तमसि विवृद्धे अप्रकाशः अप्रवृत्तिः (तमोगुण के बढ़ने पर अप्रकाश, कर्मों में अरुचि) च प्रमादः च मोहः (और प्रमाद और मोह की वृत्ति) एतानि एव जायन्ते (ये ही उत्पन्न होते हैं)।

''हे अर्जुन! तमोगुण के बढ़ने पर अप्रकाश, कर्मों में अरुचि और प्रमाद और मोह की वृत्ति, ये ही उत्पन्न होते हैं।''

अप्रकाशः अर्थात् प्रकाश का अभाव, जो सत्त्वगुण में आया था, उसका उलटा। अप्रवृत्तिः अर्थात् यह रजोगुण का उलटा अर्थात् प्रवृत्ति का अभाव। अब यहाँ पर सत्त्वगुण भी नहीं और रजोगुण भी नहीं रहता। इस तमोगुण के आने से प्रकाश अर्थात् विवेक का अभाव हो जाता है, उद्यम का भी अभाव हो जाता है। तमोगुण से ऐसी स्थिति हो जाती है। इस गुण के आक्रमण से मनुष्य की सारी चेष्टाएँ ही समाप्त हो जाती हैं। वह निरुद्यमी बन जाता है। इसके बाद भगवान कृष्ण यह बताते हैं कि जब मनुष्य की मृत्यु होती है और उसका सत्त्व प्रबल है, तो वह कहाँ जाता है? उसी प्रकार रजोगुण और तमोगुण के बढ़ने से वह कहाँ जाता है? अर्थात् सब प्रकार से बताने की चेष्टा करते हैं। भगवान कहते हैं –

यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते।।१४।।

यदा देहभृत् सत्त्वे प्रवृद्धे (जब यह मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में) प्रलयम् याति तदा (मृत्यु को प्राप्त होता है, तब) तु उत्तमविदाम् अमलान् (तो उत्तमविदों के निर्मल) लोकान् प्रतिपद्यते (लोकों को जाता है)।

''जब यह मनुष्य सत्त्वगुण की वृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब उत्तमविदों के निर्मल लोकों को जाता है।''

अर्थात् जो सत्त्वगुण देहधारी आदमी है, जब उसकी मृत्यु होती है, तो वह उत्तमविद् लोकों को जाता है। उत्तमविद् अर्थात् जो बहुत अच्छे ज्ञानी हैं। ऐसे ज्ञानी जिस लोक में जाएँगे, वे लोक अमल हैं। कुछ स्वर्ग ऐसे हैं, जो अमल नहीं हैं। कुछ स्वर्गलोक अमल हैं। कतिपय स्वर्गों में ईर्ष्या, वासना है, जहाँ पर प्रतिद्वन्द्विता है। परन्तु कुछ ऐसे हैं, जहाँ पर यह सब मल नहीं हैं। जैसे ब्रह्मलोक में वासना नहीं है। हम लोग स्वर्ग के विषय में तो पढ़ते ही हैं। इन्द्र के सम्बन्ध में कितनी कहानियाँ आती हैं, जो ईर्ष्या, वासना और प्रतिद्वन्द्विता, काम और छल से भरी होती हैं। पुराणों को पढ़ने से देवताओं के लालच और लोभ का परिचय तो हमें मिलता है, परन्तु ब्रह्मलोक में इन सब अवगुणों का सर्वथा अभाव रहता है और सत्त्वगुणी देहभृत् या देहधारी को उन उत्तम लोकों की प्राप्ति होती है। यहाँ जो बात बताई जा रही है, वह उस व्यक्ति की नहीं है, जो ज्ञानी है, जो शरीर से ऊपर उठ गया हो, जो ब्रह्मवेत्ता हो गया, उसकी बात नहीं कही जा रही है। बल्कि उस व्यक्ति की, जिसे देह का भान है, पर जो साधना करता है, सज्जन और सत्त्वगुणी है। ऐसे व्यक्ति के सत्त्वगुण प्रबल होने से उसके भीतर विवेचना आती है, वह अच्छी बातों का चिन्तन करता है। उसकी ईश्वर पर भक्ति होती है। फलस्वरूप वह मृत्यु के उपरान्त उत्तम लोकों को पा जाता है। जैसे हम पढ़ते हैं – रसिक नाम का एक मेहतर दक्षिणेश्वर में रहता था। वह श्रीरामकृष्ण का बड़ा मुँहलगा था। एक दिन इसी रसिक ने श्रीरामकृष्ण को पकड़ा और कहा कि सभी को तुम बाँटते रहते हो, तो मैं ही क्यों उससे वंचित रहूँ? उसने श्रीरामकृष्ण से कहा कि

और कुछ न सही, पर अन्तिम समय में तुम अवश्य आना और मुझ गरीब को ले जाना। श्रीरामकृष्ण को 'हाँ' कहना ही पड़ा। जब तक उन्होंने 'हाँ' नहीं कहा, तब तक रसिक ने उनके पैरों को छोड़ा नहीं। उसके लगभग ३५ वर्षों के पश्चात् रसिक की मृत्यु होती है। उस समय रसिक अपने गाँव में था। वह अचानक अपनी पत्नी से कहने लगा, मेरा बिस्तरा बाहर निकालो और तुलसी चौरे के पास लगा दो। लोगों ने सोचा कि यह बूढ़ा हो गया और यूँही प्रलाप कर रहा है। जैसे ही उसका बिस्तरा चौरे के पास लाया गया, वह चिल्ला उठा – देखो, बाबा आए हैं। आसन लगा दो। लोगों को आश्चर्य हुआ कि यह क्या कह रहा है? परन्तु वह तो उनसे प्रफुल्लचित्त हो बातें कर रहा था कि बाबा तुम मुझे लेने आ गए। उसके बाद वह चल बसा। अब रसिक के जीवन से तो यही बात स्पष्ट होती है कि वह तो कोई ज्ञानी नहीं था, पर उसका जीवन शुद्ध तथा सरल था और अन्ततः उसने उत्तम पद पाया। यह कैसे सम्भव हुआ? उसके जीवन में सत्त्व प्रबल हो गया और मृत्यु के समय उसका चेहरा दीप्तिमान हो गया। ऐसे उदाहरण हमको अनेक सात्त्विक लोगों में देखने को मिलते हैं। उसके बाद भगवान कहते हैं –

रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते।।१५।।

रजसि प्रलयम् गत्वा (रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर) कर्मसंगिषु जायते (कर्मसंगियों में उत्पन्न होता है) तथा तमसि प्रलीनः (तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा मनुष्य) मूढयोनिषु जायते (निम्नयोनियों में उत्पन्न होता है)।

''रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर कर्मसंगियों में उत्पन्न होता है तथा तमोगुण के बढ़ने पर मरा मनुष्य निम्नयोनियों में उत्पन्न होता है।''

अगर रजोगुण प्रबल है और उस समय उसकी मृत्यु हुई, तो उसके लिये 'कर्मसङ्गिषु जायते' ऐसा कहा गया है। अर्थात् वह कर्मसंगियों में पैदा होता है। अर्थात् जहाँ पर कर्म की आसक्ति विद्यमान होती है। इसका तात्पर्य इसी लोक से है। कर्म तो केवल मनुष्यलोक में ही है। बाकी तो सब भोग-भूमियाँ हैं। स्वर्गलोक में भी केवल सुखभोग ही है और नरक में दुखभोग विद्यमान है। मनुष्ययोनि ही कर्मयोनि है। इसलिए यहाँ 'कर्मसङ्गिषु जायते' कहा। अर्थात् रजोगुण के बढ़ने के फलस्वरूप वह मृत्यु के पश्चात् कर्मसंगियों में उत्पन्न होता है। तमोगुण उत्कट होने से 'मूढयोनिषु जायते' कहा गया है। ये निम्नतर योनियाँ या तिर्यक योनियाँ होती हैं। अर्थात् मनुष्य से नीचे की योनियाँ पशु-पक्षी इत्यादि। तमोगुणी व्यक्ति इन निम्नतर योनियों में जन्म लेता है। यहाँ त्रिगुणों के प्राबल्य से विभिन्न परिणाम दर्शाये गए हैं। तो गुणों की यह प्रबलता क्या मनुष्य पर निर्भर करती है? भगवान कृष्ण से यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि आपने तो यह कह दिया, मरने के समय सत्त्वगुण प्रबल हो, तो मनुष्य उच्च लोकों को प्राप्त हो जाता है। उस समय यदि रजोगुण प्रबल हो, तो मनुष्यलोक में ही रहता है। उसी प्रकार तमोगुण प्रबल हो, तो निम्नयोनियों में पहुँच जाता है। तो यह कैसे प्रबल होते हैं? यह प्रबल होना किसके द्वारा सूचित होता है? इस पर क्या हमारा अधिकार है? क्या मैं सत्त्वगुण को प्रबल कर सकता हूँ? क्या मैं रजोगुण को दबा सकता हूँ? क्या तमोगुण को अपने जीवन से हटा सकता हूँ? क्या यह क्षमता मुझमें है कि मृत्यु के समय जैसा मैं चाहूँ, वैसा हो जाए? भगवान इसका उत्तर देते हैं – जब व्यक्ति मरता होता है, तब कौन-सा गुण प्रबल होगा, इसका न्याय भगवान करते हैं या कोई अन्य तत्त्व करता है। यहाँ पर कहा गया है कि वह व्यक्ति पर ही निर्भर करता है। व्यक्ति कर्म करता है। कर्मों से संस्कार उत्पन्न होते हैं। उसने जिस प्रकार कर्म किये हैं, उन कर्मों के फलस्वरूप जिस प्रकार के संस्कार प्रबल हुए हैं, वे संस्कार वहाँ पर बने रहेंगे। इसके बाद के श्लोक में मनुष्य के पुरुषार्थ पर जोर दिया गया है। **(क्रमशः)**

कविता

रास कान्हा ने रचाई

श्रीधर प्रसाद द्विवेदी, डाल्टनगंज, झारखण्ड

शरद् ऋतु निशा थी, चद्रिका शुभ छाई ।
निधि विपिन निकुंजे श्याम वंशी बजाई ।
सुन व्रज-वनिताएँ बावली दौड़ी आई ।
अतनु तन समाया रास कान्हा ने रचाई ।।
निशि शशि मन मोहे गोपियाँ मुग्ध नाचें ।
मधुर ध्वनि निराली कृष्ण की वेणु बाजे ।
अमिय पय प्रवाही सूर्य-पुत्री किनारे ।
ललित सब सखी भी रास में नाच हारे ।।

साधुओं के पावन प्रसंग (८३)

स्वामी अशेषानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

उद्बोधन, १९२३

''प्रश्न – क्या भगवान हमारी प्रार्थनाएँ सुनते हैं?''

''स्वामी सारदानन्द (शरत् महाराज) – वे हमारी सभी प्रार्थनाएँ सुनते हैं, किन्तु उत्तर नहीं देते। भगवान हमारी सभी प्रार्थनाएँ पूर्ण नहीं करते, क्योंकि जब व्यक्ति बीमार होता है, उस समय वह जो भोजन करना चाहता है, क्या चिकित्सक उसे वह पथ्य खाने के लिए देते हैं? हमारे लिए क्या अच्छा है, भगवान उसे जानते हैं। श्रीरामकृष्ण को एक छोटे-से बालक का दर्शन हुआ था, जिसका हाथ सोने के सिक्के से भरा हुआ था। किसी के द्वारा सिक्का माँगने पर वह नहीं देता, किन्तु जो नहीं चाहता है, उसे वह दे देता है। समय अनुकूल न होने से नहीं होता। उनसे क्यों माँगोगे? उनसे प्रेम के लिए प्रेम करो।'

उद्बोधन भवन

''ऐसा निश्चय हुआ कि स्वामी सारदानन्द जी तथा अन्य लोग अगले रविवार को जयरामवाटी जायेंगे। सन्ध्या समय मैंने देखा कि शरत् महाराज श्रीमाँ के चित्र के सामने बहुत देर तक हाथ जोड़कर खड़े हुए हैं। उन्होंने भक्तिभाव से श्रीमाँ की शय्या और चरण-चिन्ह का स्पर्श करके अपने मस्तक पर धारण करके प्रणाम किया। श्रीमाँ के घर में श्रीश्री जगद्धात्री देवी के चित्र को भी प्रणाम किया।

जयरामवाटी, श्रीमाँ की मन्दिर-प्रतिष्ठा, १९२३

''जयरामवाटी में श्रीमाँ सारदा की दिव्य-लीला हुई थी।

''योगीन-माँ कहतीं – अत्यधिक कष्ट करके बहुत दूर से आये हुए भक्तों को मैंने श्रीमाँ को दीक्षा देते हुए देखा है। श्रीमाँ कहतीं, 'मैं उनको कैसे वापस कर सकती हूँ?'

''स्वामी सारदानन्द – 'मैं भी भक्तों को दीक्षा देने के पूर्व वैसा ही सोचता हूँ। मैं स्वयं से पूछता हूँ, श्रीमाँ इस अवस्था में क्या करतीं। यह उनका कार्य हैं। ये लोग उनके ही पास आये हैं। मेरा अपना कहने का क्या है?

''स्वामी हरिप्रेमानन्द – 'जीवन के अन्तिम दिनों में श्रीमाँ को राधू के कारण बहुत कष्ट हुआ। जप करते समय एक बार उन्होंने कहा था – 'या तो मुझे ले चलो, नहीं तो राधू को ले जाओ।' उनकी अन्तिम बीमारी के समय जब उनको जयरामवाटी के कुआँ का जल दिया गया, तब उन्होंने कहा था 'क्या मैं कभी जयरामवाटी जा पाऊँगी?' ''

''मन्दिर-प्रतिष्ठा के दिन पूजा के लिए मैं यहाँ-वहाँ अनेक जगह जाकर पुष्प ले आया। मुझे प्रसाद-वितरण करने की भी सेवा मिली। शरत् महाराज भक्तों को दीक्षा दे रहे हैं। वे लोग हाथ में पुष्प लेकर सुबह ८ बजे से दोपहर २ बजे तक प्रतीक्षा करते रहे। भगवान गणेश की पूजा कल हो गयी थी। मन्त्रों का उच्चारण करते समय कपिल महाराज (स्वामी विश्वेश्वरानन्द) की आँखों में आँसू थे। उन्होंने ठाकुर और श्रीमाँ का आह्वान किया।

''पूरा दिन भक्तों को दीक्षा देने के उपरान्त शरत् महाराज की अवस्था देखकर बहुत दुख हुआ। वात रोग के कारण वे पंगु जैसे हो गये थे। 'शरीर चला जाये, अपितु मैं श्रीमाँ का कार्य करता रहूँगा' – ऐसा उनका

जयरामवाटी, श्रीमाँ की मन्दिर प्रतिष्ठा १९२३

भाव था। स्वामी भूमानन्द ने कहा, 'शरत् महाराज के साथ मैं कई बार जयरामवाटी आया हूँ, लेकिन उनमें इस प्रकार का मातृप्रेम, करुणा मैंने कभी भी नहीं देखी। आस-पास गाँव के बहुत-से स्त्री-पुरुष महाराज के दर्शन के लिए आये थे। वे लोग प्रसाद पाने के लिए व्यग्र थे। सन्ध्या आरती तथा अन्य समय मन्दिर भक्तों से भरा हुआ था। रात्रि बारह बजे तक प्रसाद वितरण होता रहा।

स्वामी अखण्डानन्द की स्मृतियाँ, कोलकाता

२३ जुलाई, रविवार

"मैं दो दिन पूर्व गंगाधर महाराज (स्वामी अखण्डानन्द जी) का दर्शन करने गया था। स्वामीजी के सम्बन्ध में गंगाधर महाराज ने कहा, 'स्वामीजी प्राय: कहा करते थे, 'मेरे पिताजी अल्पायु थे, मैं भी अधिक दिन जीवित नहीं रहूँगा।' बागबाजार के पुल के पास उन्होंने यह बात कही थी। मैं स्वामीजी को बहुत प्रेम करता था। मैं सर्वदा उनके पास रहना चाहता था। मैं उनका स्वप्न देखता था। एक दिन स्वप्न में हमारा वार्तालाप अधूरा रह गया। एक अन्य स्वप्न में वह वार्तालाप पूर्ण हुआ। मैं सारगाछी से ही वापसी टिकट कराकर आता था और एक सप्ताह तक रहता था। प्रत्येक बार ही स्वामीजी अपनी अल्पायु के बारे में बोलते थे। तुम क्या सोचते हो कि मैं रोगशय्या पर मल-मूत्र का त्याग करते हुए तथा रोग से कष्ट भोगते हुए मरूँगा? मैं वीर की तरह मरूँगा। जो मेरे निकट रहेगा, वह भी नहीं जान पायेगा।' वही हुआ। जिन दिन स्वामीजी शरीर-त्याग करने वाले थे, उस दिन उन्होंने सुधीर महाराज (स्वामी शुद्धानन्द) को यजुर्वेद में सुषुम्ना नाड़ी से प्राण-त्याग के विषय में श्लोक खोजने के लिए कहा। उन्होंने उस पर विस्तृत विवेचन किया। वह तान्त्रिक सिद्धान्त के छह चक्रों की अवधारणा का मूल है। इसके बाद उन्होंने काली-पूजा के बारे में बताया।

स्वामी अखण्डानन्द

"बाद में उसी दिन स्वामीजी ने ठाकुर के शयनगृह में अन्दर से द्वार बन्द करके तीन घण्टा तक ध्यान किया। उन्होंने बाबूराम महाराज को भी अन्दर आने नहीं दिया। प्रात:काल स्वामीजी ने किसी कार्य हेतु राखाल महाराज और शरत् महाराज को बलराम मन्दिर भेज दिया। दोपहर में निरामिष बना था। उन्होंने बहुत अच्छी तरह खाया। सब कुछ सामान्य दिख रहा था। वे दोपहर डेढ़ बजे उठ गये। सभी को सोते देखकर उन्होंने कहा, "मेरे रहते हुए ही तुमलोगों ने मठ को सोने का अड्डा बना दिया है!" तत्पश्चात सभी को बैठाकर उन्होंने शास्त्र पढ़ाया। अपराह्न काल में वे बाबूराम महाराज को साथ लेकर ग्रैंड टैंक रोड़ तक घूमने गये। उसी समय वेद के विषय में वार्तालाप हुआ तथा उन्होंने वेद विद्यालय की स्थापना की इच्छा व्यक्त की।

स्वामी विवेकानन्द का शयन घर, बेलूड़ मठ

"स्वामीजी ने सन्ध्या के बाद अपने कमरे में ध्यान किया। उन्होंने ब्रजेन को पास के कमरे में जाकर जप करने को कहा। बाद में वे बिस्तर पर सो गये तथा ब्रजेन को पेट और सिर पर हवा करने के लिए कहा। सब कुछ ठीक-ठाक ही दिख रहा था। नीचे प्रसाद का घण्टा हो गया था। उन्होंने बच्चे के जैसा ऊँह शब्द किया और मुँह से दो बार साँस लिया। गोपाल दादा, बाबूराम महाराज तथा अन्य ने सोचा कि वे समाधि में हैं। ऐसा सोचकर वे लोग ठाकुर का नाम लेने लगे। गंगा के उस पार से मध्य रात्रि में चिकित्सक आये। उस समय यह निर्णय हुआ कि यह उनकी महासमाधि है।

"स्वामी सारदानन्द ने कहा, 'काशीपुर में ठाकुर के अन्तिम संस्कार के समय स्वामीजी ने कहा था, "वह देखो, मस्तक में रक्त, जैसा हमारे शास्त्रों में लिखा गया है। ब्रह्मरन्ध्र के फट जाने से योगी की मृत्यु होती है। सूक्ष्म प्राण होता है न, मस्तक को छेद कर निकल जाता है, बाहर नहीं भी देखा जा सकता है।" स्वामीजी के साथ क्या हुआ था, मुझे स्मरण नहीं है।' " **(क्रमश:)**

समाचार और सूचनाएँ

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के द्वारा आदिवासी बच्चों को शिक्षण सामग्री दी गयी

१४ जुलाई, २०२५ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा विद्यार्थियों को शिक्षण सामग्री वितरण का प्रथम चरण प्रारम्भ किया गया, जिसमें रायपुर से १६० किलोमीटर दूर बलोदाबाजार जिले के कसडोल ब्लाक के बारनवापारा के जंगलों के ८ विद्यालयों – १. शासकीय प्राथमिक शाला, खुड़मुड़ी २. शासकीय प्राथमिक शाला, फुफुन्दी, ३. शासकीय माध्यमिक शाला, फुफुन्दी ४. शासकीय प्राथमिक शाला, ढाढ़खार ५. शासकीय माध्यमिक शाला, ढाढ़खार, ६. शासकीय प्राथमिक शाला, कटवाझार, ७. शासकीय प्राथमिक शाला, झालपानी, ८. शासकीय प्राथमिक शाला, भीमभौरी में छात्र-छात्राओं को शिक्षण सामग्री वितरित की गयी। इसमें प्रत्येक बच्चे को १ स्कूल बैग, ४ कापी, १ पेन, १ पेन्सील, १ पेन्सील कटर, १ रब्बर और १ स्केल प्रदान किया गया। ११ जुलाई के सर्वे और १४ जुलाई के वितरण में शासकीय कचना धुर्वा महाविद्याल, छुरा के प्रोफेसर डॉ. विनीत साहू, डॉ. कपिल चन्द्रा, रोहन बनजारे, प्रदीप, क्षेत्रीय पटवारी अमन जी ने हार्दिक सहयोग किया।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी पर सभा हुई

२३ अगस्त, २०२५ को ३ बजे विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में 'श्रीकृष्ण चरित के विविध रूप' नामक विषय पर एक परिसंवाद का आयोजन किया गया। दीप-प्रज्ज्वलन के पश्चात् बच्चों ने वेद-पाठ किया। कैलास यादव के भजन गायन और मनोज यादव के अतिथियों के परिचय के पश्चात् डॉ. सत्येन्दु शर्मा जी ने 'बाल कृष्ण' और डॉ. सीमा रानी प्रधान ने 'प्रेमी कृष्ण' अत्यन्त रोचक व्याख्यान दिये। कार्यक्रम की अध्यक्षता स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने की। कार्यक्रम में कुल ५५०लोगों ने भाग लिया।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के छात्रावास के विद्यार्थियों को पुरस्कार मिला

१२ सितम्बर, २०२५ को साइन्स कॉलेज, रायपुर में छात्र संगठन द्वारा आयोजित क्रिकेट प्रतियोगिता में

विवेकानन्द विद्यार्थी भवन के छात्रों ने द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। इस विजेता टीम में आश्रम के ६ छात्र सहभागी थे।

साधुनिवास का उद्घाटन

२५ जून, २०२५ को **कल्याणी** में साधु निवास के द्वितीय तल का उद्घाटन रामकृष्ण मठ और मिशन के उपाध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने किया। २७ जून को उन्होंने मन्दिर में श्रीमाँ सारदा और स्वामीजी के नये चित्र का अनावरण भी किया।

दीक्षान्त महोत्सव का आयोजन

४ जुलाई, २०२५ को विवेकानन्द विश्वविद्यालय, बेलूड़ मठ में दीक्षान्त महोत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें ३९७ प्रतिनिधियों को डिग्री और डिप्लोमा प्रदान किया गया। रामकृष्ण मठ-मिशन के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज, उपाध्यक्ष स्वामी भजनानन्द जी महाराज और विश्वविद्यालय के कुलाधिपति और रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव श्रीमत् स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने छात्र-छात्राओं को सम्बोधित किया। राज्य सरकार में मन्त्री डॉ. सुकान्त मजुमदार ने भी बच्चों को सम्बोधित किया।

वार्षिक अनुक्रमणिका

‘विवेक-ज्योति’ में वर्ष २०२५ ई. में प्रकाशित

लेखकों तथा उनकी रचनाओं की सूची

अलंग संजय डॉ. – छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति में राम १७०,

अलोकानन्द स्वामी – शिवभाव से जीव-सेवा १०५, गुरु और शिष्य २९६, श्रीराम की शारदीय दुर्गा-पूजा ३९३, विविध रूपों में काली ४४७,

अवस्थी सुदर्शन – तमिलनाडु का कन्याकुमारी शक्तिपीठ ४२५,

अग्रवाल सुप्रिया आशीष डॉ. – राष्ट्रीय आन्दोलन में सिस्टर निवेदिता का पत्रकारिता के माध्यम से योगदान ४५३,

आत्मानन्द स्वामी – गीतातत्त्व-चिन्तन (१३/३) ४०, (१३/४) ९०, (१३/५) १३५, (१३/६) १८२, (१३/७) २२९, (१३/८) २८२, (१३/९) ३३०, (१४/१) ३७९, (१४/२) ४२१, (१४/३) ४६७, (१४/४) ५२०, (१४/५) ५६५,

ओजोमयानन्द स्वामी – शिष्य के दिव्य स्वरूप के प्रकाशक हैं गुरुदेव ३२०,

ईशानन्द स्वामी – श्रीरामकृष्ण के लीला-साथी मानसपुत्र राखाल ६८, शिव-प्रिय श्रावण ३१४, शरत्काल में अनन्तरूपों में दुर्गा-पूजा ४१०,

उपाध्याय, पं. रामकिंकर – रामगीता (५/२) १८, (५/३) ६५, (५/४) ११०, (५/५) १६०, (६/१) २०९, (६/२) २५५, (६/३) ३०४, (६/४) ३५१, (६/५) ३९७, (६/६) ४४३, (६/७) ४९३, (६/८) ५४८

उपाध्याय अयोध्यासिंह जी पं. – भगवान भूतनाथ और भारत ८३,

उपाध्याय राजकुमार डॉ. – हिन्दी में रामकाव्य की परम्परा १६४, परतन्त्रता काल में राष्ट्रमन्त्र के उद्गाता ३७७,

उरुक्रमानन्द स्वामी – श्रीरामकृष्ण के रामलला १५३,

केशरवानी जी.एस. – रामकथा की वैश्विक परम्परा १८१,

खुशलानी वन्दना डॉ. – आजादी के भूले-बिसरे गीत ३६०,

गुप्ता राजकुमार – होइहि सोइ जो राम रचि राखा २२८,

गुणदानन्द स्वामी – (विवेकानन्द युवा प्रांगण) युवाओं के प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द ३१, युवा-शक्ति के प्रेरक स्वामी ब्रह्मानन्द ७५, अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस - प्रेरणा और सशक्तिकरण का उत्सव १२१, जीवन को सकारात्मक और सार्थक कैसे बनाएँ? १६७, युवाओं के लिए प्रेरणादायक प्रसंग २१६, आधुनिक चुनौतियाँ और उत्कृष्टता प्राप्त करने के मार्ग २६७, राष्ट्रीय विकास के अग्रदूत ३१२, अनसुने योद्धाओं के संघर्ष की प्रेरणादायक गाथाएँ ३५७, अनकहे किन्तु मूल्यवान प्रसंग ४०८, नचिकेता – एक आदर्श युवा ४५६, युवाओं के लिए कठोपनिषद का दिव्य उपहार ५०७, आशावान, बलवान और संकल्प में दृढ़ बनो ५५७,

गुमाश्ता डॉ. राघवेन्द्र – नमामि देवि नर्मदे ६५,

घोष रीता – कर्नाटक के कित्तूर की क्रान्तिकारिणी रानी चेन्नाम्मा ३६९, अन्नदायिनी ब्रह्मज्ञान-प्रदायिनी श्रीमाँ सारदा ५४१,

चन्दन कुमार – दशहरा और रामलीला का सम्बन्ध तथा महत्त्व ४५९,

चेतनानन्द स्वामी – साधुओं के पावन प्रसंग (७२) ४३, (७३) ९३, (७४) १३८, (७५) १८५, (७६) २३३, (७७) २८५, (७८) ३३२, (७९) ३८२, (८०) ४२७, (८१) ४७३, (८२) ५२३, (८३) ५६८,

चूड़ीवाल अरुण – पारिवारिक क्लेश से मुक्ति कैसे मिले? २८१, श्रीकृष्ण का निराकार वस्त्रावतार ३५९,

चौबे उत्कर्ष – स्वामी विवेकानन्द की प्रखर राष्ट्रीय चेतना १५, स्वामी ब्रह्मानन्द की काशी-लीला ८४, भगवत्पाद शंकराचार्य का अवतार, कार्य और प्रासंगिकता २०१, वेदों में श्रीदुर्गा-पूजा ४००, शास्त्रानुसार छठ पूजा कैसे करें? ४४०,

तन्निष्ठानन्द स्वामी – स्वामी ब्रह्मानन्द और भुवनेश्वर ५९, १२५, १८७, २२३, २७६, ३२३,

तिवारी लक्ष्मीनारायण – चोवा, चन्दन, अरगजा वीथिन में रच्यौ है गुलाल १३०,

दयापूर्णानन्द स्वामी – दैवी सम्पदरूप श्रीरामकृष्ण ११२, शास्त्रानुसार श्रीमाँ सारदा का दिव्य जीवन ५३७,

देवभावानन्द स्वामी – भगवान गौतम बुद्ध २०५,

निखिलेश्वरानन्द स्वामी – सम्बन्धों का सम्पोषण : सहभाजन एवं संरक्षण की कला ४८९, ५५९

नैनवाल रमेशचन्द्र डॉ. – मानवीय आदर्शों के प्रतिमान भगवान राम १७५,

पूर्णानन्द स्वामी – श्रीरामकृष्ण गीता (४२) १०, (४३) ७४, (४४) १३२, (४५) १७७, (४६) २२७, (४७) २७५,

(४८) ३१९, (४९) ३७४, (५०) ४१४, (५१) ४५१, (५२), (५३) ५६४,

पंकज गिरीश – राष्ट्रबोध ही एक लक्ष्य हो ३७५,

पाण्डेय अशोक – भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा सम्पूर्ण विधि-विधान : एक अवलोकन २४८,

प्रणवानन्द स्वामी – वेदान्त क्या है : शंकराचार्य से स्वामी विवेकानन्द तक ५१४,

प्रपत्त्यानन्द, स्वामी – (सम्पादकीय) राष्ट्र के कल्याण हेतु महाकुम्भ में एक महान संकल्प लें ७, ब्रह्म के आनन्द में स्वामी ब्रह्मानन्द ५५, श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में अज्ञानी, ज्ञानी और विज्ञानी १०३, अशरण-शरण श्रीराम १५१, सत्य में प्रतिष्ठित श्रीरामकृष्ण १९९, चित्तशुद्धि का सहज उपाय – क्रन्दन २४७, मोहि माया बहुत सतायो, हे गुरु शरण में आयो २९५, स्वाधीनता : हम पंछी उन्मुक्त गगन के ३४३, धर्म-सभा के मंच पर जब पहुँचे वीर-नरेन्द्र ३९१, सर्वविजयिनी शक्ति की आराधना ४३९, शिक्षार्जन हेतु आवश्यक सद्गुण : विनम्रता ४८७, प्रार्थनामयी माँ से है प्रार्थना मेरी ५३५,

पुरोहित ऐश्वर्य – स्वामी विवेकानन्द और नारी सम्मान ४७०

ब्रह्मेशानन्द स्वामी – जप और ध्यान २४९, ३००, पार्श्वनाथ की जन्मभूमि ५०१,

बोधस्वरूपप्राणा (प्रव्राजिका) – सनातन धर्म ५०३,

भट्ट गीता योगेश डॉ. – नादानुसन्धान विधि : आत्मसाक्षात्कार की ओर एक कदम २६२,

भट्टाचार्य चम्पा – सत्संग ५१७,

मनराल मोहन सिंह – कटारमल सूर्य मन्दिर, कोसी अलमोड़ा ४७१,

मिश्रा नवीन चन्द्र – व्याकुल योग १३३,

मोदी नरेन्द्र (प्रधानमन्त्री) – अध्यात्म और सतत विकास में सन्तुलन चाहिए २७०,

मुखोपाध्याय अन्वय (डॉ.) – मा त्वं ही तारा और स्वामी विवेकानन्द २१, ओंकारेश्वर तीर्थ, माँ नर्मदा और स्वामी ब्रह्मानन्द ७९,

मैथिलीशरण स्वामी – रामनवमी १२४, गंगा - हम तो चलते ही जायेंगे २७४, नवदुर्गा ४२४,

राय महेश प्रसाद डॉ. – आधुनिक भारत को विवेकानन्द का योगदान २८,

वर्मा नम्रता – स्वामी विवेकानन्द के विचारों के आलोक में नारी सशक्तिकरण २२८, कारगिल के वीरों का पुण्य स्मरण ३१८,

विवेकानन्द स्वामी – धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति ६, तू सर्वव्यापी आत्मा है, इसका मनन और ध्यान कर ५४, श्रीरामकृष्ण के उपदेश हमारे लिए विशेष कल्याणकारी हैं १०२, भक्ति प्राप्त करने का एक उपाय है, ईश्वर का बारम्बार नाम-जप १५०, बुद्धदेव ने कहा अपनी उन्नति अपने ही प्रयत्न से होगी १९८, बहु रूपों में खड़े तुम्हारे आगे, और कहाँ है ईश २४६, समभाव से विकास करना ही मेरे कहे हुए धर्म का आदर्श है २९४, संसार हमारे देश का अत्यन्त ऋणी है ३४२, सतीत्व आधुनिक हिन्दू नारी के जीवन की केन्द्रीय भावना है ३९०, तू भी वही पूर्ण ब्रह्म है ४३८, निजस्वरूप स्मरण, सदा उसी अन्त:स्थ ईश्वर का स्मरण ४८६, माँ सारदा का स्वरूप क्या है तुम लोग नहीं समझ सके हो ५३४,

विमलात्मानन्द स्वामी – बेलूड़ मठ में स्वामी ब्रह्मानन्द मन्दिर ५७,

शंकराचार्य श्री – प्रश्नोपनिषद् (५५) ३३, (५६) ८२, (५७) १२९, (५८) १६६, (५९) २२२, (६०) २७३, (६१) ३१७, (६२) ३५६, (६३) ४१८, (६४) ४७५, (६५) ५१०, (६६) ५१०,

श्रीवास्तव ओमप्रकाश – कैलास और शिवतत्त्व ८८

श्रीवास्तव प्रखर – काशी में काली उपासना ४६३,

शर्मा सत्येन्दु डॉ. – नीतिविमर्शः २७५, भारतीय ज्ञान परम्परा ४९६,

शर्मा सीमाहरि – लोक जीवन में श्रीराम १५७,

शिवानन्द स्वामी – वे प्रकाशस्वरूपिणी माँ सभी के अन्दर हैं ३४४, मन को वश में करने का उपाय ३८७,

शुद्धिदानन्द स्वामी - वर्तमान युवाओं हेतु स्वामी विवेकानन्द का सन्देश ११,

सत्कृतानन्द स्वामी – गुरु महिमा अपरम्पार ३२८, शक्ति ४१९,

सत्यरूपानन्द, स्वामी – स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गाँधी २६, ७३, सूक्ष्म और स्थूल २८०, आध्यात्मिक प्रगति हो रही है कि नहीं कैसे समझें? ३२७ आध्यात्मिक साधना शिविर क्यों? ४०६, मनुष्य जीवन की महानता को समझें ४५०, संसार की असारता को समझिए ५०९, वैराग्य-सुख का अनुभव कीजिये ५६३,

सन्तोष – योग-साधना और ब्रह्मचर्य २५९,

सरकार राजेश डॉ. – स्वामी विवेकानन्द का संस्कृत-विद्या में पाण्डित्य ३४,

सान्याल अरूपम डॉ. – पाञ्चरात्र शास्त्रों में दुर्गा ४१५,

सावती डॉ. – कृष्ण विरही मीरा के पद २१९,

सेनगुप्ता बोधिसत्त्व – कृष्ण एवं कृष्णानुजा ३४५,

सिंघानिया स्नेह – श्रीकृष्ण चरित की महनीयता ३६४,

सिंह जया डॉ. – भारतीय संस्कृति में गुरु-परम्परा ३०८, आधुनिक नारी और प्राचीन आस्था का संघर्ष ५५२,

सिंह श्रीमती मिताली – (बच्चों का आंगन) विवेकानन्द

के जन्म-दिवस मकर संक्रान्ति की वैज्ञानिकता का जन-जीवन में प्रभाव २५, पाठशाला में मित्रों की पिटाई से दुखी राखालराज ७१, वैदिक नारी अपाला ११७, राम-नाम ने तुलसी का जीवन बदल दिया १६३, महारानी अहिल्या बाई २१२, श्रीरामकृष्ण देव की गंगा-भक्ति और गंगा दशहरा २५८, रानी गुंडिचा का अलौकिक प्रेम ३०७, क्रान्ति की नायिका – शान्ति घोष और सुनीति चौधरी ३५४, दुर्घटना भी नहीं तोड़ पायी गोल्डी का साहस ४०५, छठ पूजा का वैज्ञानिक महत्त्व ४४६, एवरेस्ट की चढ़ाई में दृष्टि बाधक नहीं ५००, बच्चों पर अहैतुकी कृपा बरसाने वाली माँ ५५१,

सिंह रमन डॉ. – युवाओं के प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द ३४९,

सर्वप्रियानन्द स्वामी – हीरा और चोर की कहानी १८७, राजपुत्र का भ्रम १९०,

हॉथोर्न नथानियल – महान पत्थर का मुख २१३, २५३

कविता-भजन

अचला देवी श्रीमती – मेरी सारदा माँ आयी है ५५६,

ओमर सोनल मंजु श्री – हमारे इष्ट श्रीगणेश १७७

कुमार अनिल 'फतेहपुरी' (डॉ.) – जय हे स्वामी विवेकानन्द १०, ब्रह्मानन्द-चरित-गान ८१, आजु काशी फाग मचावे जोगिया १०९, ब्रज मंडल धूम मचायो रसिया १३१, अवधेश्वर प्रभु हरे हरे १७४, हे स्वयं सिद्ध सिद्धार्थ बुद्ध २१८, हे जगदगुरु शंकराचार्य! २२१, गंगा-महिमा २६९, हे रामकृष्ण अवतार हरे ३११, जय जय गिरिधर गोपाल ३५५, योगिराज अरविन्द ३६२, धारण कर नव अवतार शिवे! ४०७, श्रीकालिकाष्टकम् ४५२, वाणावर के तुंग शिखर पर ५१३, कर कृपा-वर्षण तनय पर ५५६,

गौड़ रामकुमार – स्वामी विवेकानन्द वन्दना १२३, श्रीरामकृष्ण स्तुति – (१) १६९, (२) २७४, (३) ३१०, (४) ३६८, (५) ४१७, (६) ४६२, (७) ५१६, (८) ५६२,

चन्द्रमोहन – जो चरणों में सन्तों के बैठेंगे हम २२७, निष्काम कृपा के सागर श्रीगुरुदेव ३११,

तिवारी आनन्द 'पौराणिक' – ठाकुर शरण तुम्हारी आया ७८, रथ में शोभित जगदीश्वर २५७, माँ, दुख भी तो वरदान तुम्हारा ४०४, नन्हें दीप की कामना ४६६,

तिवारी अनिल – हे प्रेममयी राधे! ४०७,

द्विवेदी श्रीधर प्रसाद डॉ. – श्रीरामकृष्ण कृपालु भगवन् १२४, ब्रह्मज्ञान बाँटे जग शंकर आचार्य जी २१८, नन्दलला चित मोह रहा है ३७४, शोक हरी सुर दी वर दुर्गा ४२६, शुभदे सर्वकालिका ४५२, अवशेष पूर्ण ही रहता है ५०२,

त्रिपाठी राजनाथ डॉ. – जय जय भवानी ब्रह्माणी ४२०,

त्रिपाठी भानुदत्त 'मधुरेश' – परम धन्य वह जीव है ३९

मैथिलीशरण स्वामी – प्रभु मैथिलीश्वर त्वं स्वयम् १२४, हे प्रभु! कवन जतन कर पाऊँ

परमार बाबूलाल – अब मैं हारा हे भगवन् ! २६९,

पटले ओ.सी. – निवेदिता है समर्पिता ४५२

भूषण केयूर – मन चंचल है, वश में कर ले ३९, व्यर्थ न जनम गँवा ३५५,

वशिष्ठ अनूप डॉ. – कृष्ण का संघर्ष से नाता रहा ३५५,

डॉ. सत्येन्दु शर्मा – शिवसूक्तम् – ७२,

वर्मा ओमप्रकाश डॉ. – भारत के तुम अनुपम गौरव १०, श्रीनर्मदा-स्तुति ६४, रामकृष्ण प्रभु का गुण गाता १११, श्रीराम राम जय राम राम १८४, बुद्ध वन्दना २१८, जयतु जयतु जय जगन्नाथ प्रभु २६९, जगद्गुरु जय रामकृष्ण प्रभु ३१६, कृष्णचन्द्र प्रभु परम सुजान ३५५, माँ श्यामा मैं तुम्हें पुकारूँ ४०७, जयतु जयतु जय मातु कालिके ४५२, हे शिव सदा सुमति के स्वामी ५१३,

वैश्य गौरीशंकर – धरती पर लो अवतार राम १७६,

श्रीवास्तव विजय कुमार – प्रभु मुझको इतना बल दे दे ५१३, सम्बल बनूँ ५५५,

सिन्हा सदाराम 'स्नेही' – कर ले बजरंगी से प्रीत १६२, जगन्नाथ का बुलावा आया है २६६,

अन्य संकलन

पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) – १७, ५३, १०१, १४९, १९७, २४५, २९३, ३४१, ३८९, ४३७, ४८५, ५३३,

लेख एवं प्रसंग

स्तोत्र-भजनादि संकलन – स्वामी विवेकानन्द जयगीतम् ५, स्वामी ब्रह्मानन्द-स्तुतिः ५३, श्रीरामकृष्ण-सुप्रभातगीतम् १०१, श्रीरामचन्द्र ध्यानम् १४९, श्रीशंकराचार्य-स्तवः १९७, श्रीगंगा-स्तुतिः २४५, श्रीगुरु-स्तोत्र २९३, श्रीकृष्ण-स्तुतिः ३४१, श्रीदुर्गा स्तुति ३८९, श्रीकाली स्तुति ४३७, विवेकानन्द वन्दना ४८५, श्रीमाँ सारदा स्तुति ५३३,

पुस्तक समीक्षा – मनीषियों की दृष्टि में संस्कृत ४५, सूक्तसारिका १४०, शाश्वत श्रुति-विज्ञान १४१, राम के किंकर रामकिंकर १८९, कहानी नर्मदालय की 'शालेय शिक्षा का एक अनूठा प्रयास' १९०, नर्मदा परिक्रमा : एक अन्तर्यात्रा २८६, श्रीमाँ सारदा देवी की दिव्य लीला ४७६,

पुस्तकें प्राप्त – १. सर्वेश्वर जगन्नाथ - सदाराम सिन्हा, २. जगदीश्वर जगन्नाथ – सदाराम सिन्हा, ३. बाल-रामायण - पं. गिरिमोहन गुरु,

समाचार और सूचनाएँ – ४६, ९५, १४२, १९१, २३७, २८७, ३३४, ३८४, ४३०, ४७७, ५२५, ५७०,

वार्षिक अनुक्रमणिका (२०२५) – ५७१